महात्मा नारायण स्वामी

* ओ३म् *

मृत्यु और परलोक

अर्थात्

शरीर, अन्त:करण तथा जीव का स्वरूप और भेद, जीव
और सृष्टि की उत्पत्ति का प्रकार, मृत्यु का स्वरूप
तथा बाद की गति, मुक्ति और स्वर्ग, नरकादि
लोकों का स्वरूप, मैस्मरइज़्म और रूहों
के बुलाने आदि पर रोचक विचार
और मुक्ति के साधन आदि
विषयों पर नये ढंग
पर एक अद्भुत
पुस्तक ।

लेखक—

श्री नारायण स्वामी जी महाराज

प्रकाशक—

वैदिक साहित्य प्रचारिणी सभा

देहली ।

सत्रहवीं बार २०००] १९३९ [मूल्य ।-)

प्रकाशक—
वैदिक साहित्य प्रचारिणी सभा,

मुद्रक—
आचार्य राजेन्द्र नाथ शास्त्री,
आर्य प्रिन्टिङ्ग प्रेस,
चर्खेवालान देहली ।

प्रकाशक का निवेदन

श्री पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज ने जो साहित्य आर्य्य समाज को दिया है वा जो वे इस समय दे रहे हैं, वह आर्य्य समाज की एक बहु मूल्य निधि है। यह साहित्य उच्च कोटि का साहित्य है। प्रस्तुत ग्रन्थ 'मृत्यु और परलोक' उस साहित्य का एक चमकता हुआ रत्न है। इस ग्रन्थ की लोकप्रियता का अनुमान इस बात से सहज ही लगाया जा सकता है कि यह संस्करण इस ग्रन्थ रत्न का १७ वाँ संस्करण है। ऐसे उत्कृष्ट और गंभीर साहित्य से सर्व साधारण लाभ उठायें, सर्व साधारण में ऐसे साहित्य के परिशीलन के लिए अभिरुचि उत्पन्न हो और बढ़े इस पुनीत भाव को सामने रखकर केवल लागत मात्र मूल्य पर हमने यह संस्करण प्रकाशित किया है। इस संस्करण के प्रकाशित होने से पूर्व इस ग्रन्थ का मूल्य अधिक से अधिक २) और कम से कम ||।=) रहा है। इतना अधिक मूल्य होते हुए भी जनता ने इस ग्रन्थ का जितना सम्मान किया है उससे कहीं अधिक इस ।=) वाले संस्करण का होगा, और होना भी चाहिये, इसी आशा और विश्वास से प्रोत्साहन ग्रहण करते हुए, हम इस संस्करण को जनता के समक्ष रखते हैं।

श्री सेठ बैजनाथ ब्रह्मानन्द जी भरथिया, भिवानी निवासी, देहली प्रवासी उन असंख्य स्वाध्याय शील सज्जनों में से हैं जो

श्री स्वामी जी महाराज के प्रकाशनों से अत्यन्त प्रभावित हैं और उनकी इच्छा है कि वे प्रकाशन यथा संभव सस्ते से सस्ते-लागत मात्र मूल्य-पर प्रकाशित हों जिससे जन—साधारण उनसे ज्याद से ज्यादा लाभ उठा सकें, उनकी उसी इच्छा का एक असली रूप यह ग्रन्थ है। इस पुस्तक के प्रकाशन के व्यय भार उठाने में जो योग श्री सेठ जी ने सभा को दिया है, उनके लिए सभा उनकी कृतज्ञ है।

प्रधान

वैदिक साहित्य प्रचारिणी सभा देहली।

तीसरे संस्करण की भूमिका

जनता ने इस छोटे से तुच्छ ग्रन्थ का जितना मान किया है उसके लिए मैं हृदय से कृतज्ञता प्रकट करता हूं। एक वर्ष क्या सात मास में ही यह तीसरा संस्करण स्वाध्याय प्रिय पाठकों के हाथ में पहुंच रहा है। ग्रंथ के लिखने के बाद अनेक ग्रंथों के स्वाध्याय में आने से यह आवश्यक था कि इस में अनेक बातों का समावेश किया जाता परन्तु शीघ्रता में होने के कारण यह नहीं किया जा सका। चौथा संस्करण अवश्य परिवर्द्धित संस्करण होगा। इस संस्करण में केवल यही यत्न किया गया है कि छापे की अशुद्धियां-जो इस से पूर्व के दोनों संस्करणों में बहुतायत से रह गई थीं-न रह जांय।

रामगढ़ नैनीताल
वैशाख शुक्ला १२ संवत १९८६ वि०

नारायण स्वामी

सत्रहवें संस्करण की भूमिका

मृत्यु और परलोक के प्रथम संस्करण के बाद ही पुस्तक के संशोधन और परिवर्धन का विचार था, परन्तु पुस्तक की मांग इतनी अधिक हुई कि शीघ्रता के साथ एक के बाद दूसरा संस्करण निकलते निकलते १५ संस्करण निकल गये और अब इस सत्रहवें संस्करण के समय उस विचार की पूर्ति का अवसर प्राप्त हुआ—पुस्तक के अनेक स्थलों पर संशोधन और परिवर्धन किया गया है जिससे विश्वास है कि पुस्तक की उपयोगिता कुछ न कुछ बढ़ी ही होगी। अस्तु

हां बीच में दो भद्र पुरुषों के लेख प्राप्त हुये—

एक सज्जन ने स्वर्ग के सम्बन्ध में कुछ जिज्ञासा की थी—पुस्तक में स्वर्ग के सम्बन्ध में प्रकट किया गया था कि वह सूक्ष्म शरीर-धारियों की पृथक् दुनिया नहीं है किन्तु मनुष्य-योनि में ऐसे सज्जन, जो केवल सुख ही का उपभोग करते हैं और जिन्हें दुःख स्पर्श नहीं कर सकता, स्वर्ग-प्राप्त प्राणी हैं और इस प्रकार स्वर्ग कोई पृथक् लोक नहीं है किन्तु इसी दुनिया में उसकी सत्ता है।

उन सज्जन के लेख का भाव, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के एक लेख के जो उन्होंने अथर्व वेद भाष्य के प्रसंग में लिखा था, आधार पर यह था कि स्वर्ग सूक्ष्म शरीर-धारियों की पृथक् दुनिया होनी चाहिये—परन्तु यह बात जहां अप्राकृतिक और शरीर की बनावट के विरुद्ध है (देखो इसी पुस्तक के तीसरे अध्याय का पहला परिच्छेद) वहां प्रमाण के भी विरुद्ध है शतपथ ब्रह्मण में साफ़ तौर से कहा गया है कि:—

सह सर्वतनुरेव यजमानोऽमुष्मिंल्लोके संभवति ॥

(शत० ४ । ६। १ ।१)

अर्थात् यजमान स्वर्ग में समस्त शरीर (स्थूल शरीर सहित) के साथ उत्पन्न होता है।

दूसरे सज्जन के एक पत्रकी कापी उनके एक मित्रने मेरे पास भेजते हुए इच्छा प्रगट की थी कि मैं इस विषय में शीघ्रही और भी कोई पुस्तक लिखूं। वह विषय रूहों के बुलाने आदि के सम्बन्ध में है। उन सज्जन ने पत्र में लिखा था कि यह विषय

बड़ा विस्तृत है, इनका ज्ञान प्राप्त करने के लिये बड़े परिश्रम और योग्यता की जरूरत है। उन्होंने उदाहरण देते हुये लिखा है कि "स्वामी जी (मैं) ने, रूहों के फ़ोटो लेने के विषय को, एक दो पुस्तकों के हवाले देकर ही, रद्द कर दिया है। उन सज्जन ने, जो कि थियोसोफिस्ट हैं इस फ़ोटोग्राफ़ी की पुष्टि में "स्वर्ग वासी" स्टीड महाशय (Mr. Stead Editor of Review of Reviews) के एक लेख का हवाला दिया है जो उन्होंने अपने एक ग्रंथ (Juba's letters by Mr. Stead) की भूमिका में लिखा था और जिसमें एक रूह को अपने सम्मुख फोटो लेने का उल्लेख किया गया है। ऐसा मालूम होता है कि इन आक्षेपक महोदय ने मृत्यु और परलोक को ध्यान पूर्वक नहीं पढ़ा। मैंने इस विषय में एक दो व्यक्तियों के विरोध का उल्लेख नहीं किया है किन्तु लिखा है कि स्वयं एक प्रतिष्ठित अध्यात्मवाद के संघ (Society for psychic Research, London) की ओर से परीक्षण के बाद इस रूहों के फ़ोटोग्राफी के वाद को मिथ्या ठहराया गया है—वह परीक्षण उपर्युक्त संघ की ओर से लंदन के साइकिक कौलिज (The British college of psychic science, London) में २४ फरवरी १६२८ ई० को हुआ था जिसमें रूहों के फ़ोटोग्राफ़र होप ने, उन प्लेटों को, जो संघ की ओर से लाये गये थे, चालाकी से बदल दिया था—डोइल ने, जो होप ही का नहीं तथा इस विषय का भी पक्षपाती था, प्लेटों के बदलने की बात स्वीकार की है—

(परीक्षण का सविवरण उल्लेख पुस्तक में यथा स्थान दिया गया है) इस परीक्षण का विवरण उपर्युक्त साइकिक संघ की कार्यवाही में सम्मिलित करके संघ की ओर से प्रकाशित कर दिया गया है--

अस्तु, एक संघ के परीक्षण के मुक़ाबिले में, स्टीड के लेख को, तरजीह देना, इसे मैं आक्षेपक का साहस ही, कह सकता हूँ, यदि स्टीड आज जिन्दा होते और टिटैनक जहाज के साथ डूब न जाते तो इस संघ के परीक्षण के बाद, मेरा अनुमान है कि उन्हें अपनी सम्मति बदलने के लिये बाधित होना पड़ता।

अतः स्पष्ट है कि मैंने पुष्ट परीक्षणों के आधार पर इस विषय को रद्द किया है।

इस पुस्तक के लिखने में जिन पुस्तकों से सहायता ली गई है उनकी सूची इस संस्करण में दी जाती है।

इन पुस्तकों में से अधिकांश के हवाले पुस्तक में यथा स्थान दिए गए हैं परन्तु जिन पुस्तकों के हवाले पुनरुक्ति आदि के भय से नहीं दिये गये हैं, मैं उनका भी उतना ही आभारी हूँ जितना उनका जिनके हवाले दिये गये हैं क्योंकि उनके पुस्तकों से भी विषय के निर्णय और निश्चय करने में पर्याप्त सहायता मिली है। इन्हीं थोड़े से शब्दों के साथ, पुस्तक नवीन संस्कृत रूप में जनता के सम्मुख रक्खी जाती है--

नारायण आश्रम, रामगढ़ (नैनीताल)
श्रावण शुक्ल ११ संवत् १९९१ वै०

नारायण स्वामी

भूमिका

अनेक सज्जन चिरकाल से आग्रह करते चले आरहे थे कि मुझे कोई ऐसी पुस्तक लिख देनी चाहिए, जिसे विशेष कर ऐसे समय में पढ़कर पढ़ने वाले शान्ति उपलब्ध किया करें, जब परिवार में दुर्भाग्य से मृत्यु होने या ऐसी ही किसी अन्य आपत्ति के आने से वे दुःखों में फंसे हुआ करें।

दूसरे प्रकार के कुछ सज्जनों ने इच्छा प्रकट की, कि मरने के बाद क्या होता है, इस विषयपर प्रकाश पड़ना चाहिये। कोई कहते हैं कि मरने के बाद रूहें किसी लोक विशेष में जाकर आबाद हो जाती हैं और वहां से बुलाने पर आ भी जाया करती हैं और अपने सन्देश भी दिया करती हैं। कोइ कहते हैं कि मरने के बाद हमेशा के लिये मनुष्य अपने कर्मानुसार स्वर्ग या नरक में चला जाया करता है। कोई कहते हैं कि प्राणियों को मरने के बाद अन्तिम निर्णय के लिये चिरकाल तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है, उसके बाद निर्णय दिवस आने पर उसका इन्साफ होता है और वे उसी इन्साफ के अनुकूल दोज़ख और वहिश्त में जाया करते हैं। इसी प्रकार की अन्य बातें भी कही जाती हैं। परन्तु असल बात क्या है, इसका पता नहीं चलता। इसी लिये दूसरे प्रकार के सज्जनों ने भी एक पुस्तक लिख देने के लिये इसरार किया। दोनों प्रकार के आग्रह जारी रहे। परन्तु इनकी पूर्ति के लिये बहुत दिनों तक कुछ भी न कर सका, अवश्य इस

बीच में, मरने के बाद क्या होता है और परलोक आदि के सम्बन्ध में अनेक पुस्तक देखने का अवसर प्राप्त हुआ। अन्त में मित्रों की बात को और भी बहुत दिनों तक टालना उचित प्रतीत नहीं हुआ। इसके सिवाय अनेक पुस्तकों के देखने से जो तरह तरह की बातें परलोक के सम्बन्ध में उन में लिखी हुई मिलीं, उनके लिये कुछ न लिखना भी अच्छा नहीं मालूम हुआ। इन्हीं कारणों से, एक पुस्तक का लिख देना निश्चय करके, लिखना शुरू कर दिया गया। परन्तु मेरे जैसे व्यक्ति से जिस के जिम्मे अनेक प्रकार के कार्यभार हों, यह आशा नहीं की जा सकती थी कि मैं शीघ्रता से पुस्तक को समाप्त करदूंगा। हुआ भी यही, पुस्तक केसमाप्त करने में २ वर्ष से अधिक समय लग गया। तो भी किसी न किसी प्रकार पुस्तक समाप्त हो गई। पुस्तक के सम्बन्ध में एक बात कह देना आवश्यक है। मरने के बाद क्या होता है, इसे ईश्वर या मरने वाले के सिवा तीसरा कोई नहीं जान सकता। इसीलिये इस विषय में इतने और ऐसे अनोखे मतों की भरमार है कि जिन सबकी समालोचना करना तो दूर किनार, उनका उल्लेख कर देना भी कठिन है। इस प्रकार के अनेक मत हों सही परन्तु इन सब में वही सिद्धान्त अधिक माननीय हो सकता है, जो अधिक से अधिक पुरुषों को ग्राह्य हो और बुद्धि पूर्वक जान पड़े। बस इसी बात को दृष्टि में रख कर इस पुस्तक के पढ़ने से, विश्वास है कि किसी को भी निराश न होना पड़ेगा। पुस्तक में अन्य भी अनेक सिद्धान्तों पर प्रसंग-

वश विचार किया गया है, जिनके अनुकूल दृष्टि-कोण रखने से प्रत्येक व्यक्ति हृदय में शान्ति का संचय कर सकता है।

पुस्तक के तय्यार करने में स्वाभाविक था कि अन्य पुस्तकों से सहायता ली जाती, तदनुकूल सहायता ली गई है। जहाँ २ सहायता ली गई है, पुस्तक और उनके रचयिताओं के नाम फुट नोटों में दे दिये गये हैं। यहां मैं उन सभी महानुभावों को जिन की पुस्तक के पढ़ने से यदि किन्हीं दुःखित हृदय नर नारियों को शान्ति प्राप्त हुई या किन्हीं जिज्ञासुओं का समाधान हुआ, तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

नारायण आश्रम रामगढ़,
श्रावण १७–८
संवत् १९८५ वि०

नारायण स्वामी
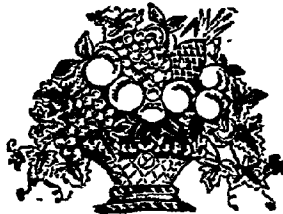
सूची उन पुस्तकों की जिन के देखने के बाद पुस्तक प्रकाशित किया गया

संख्या	नाम पुस्तक
१	चारों वेद
२	दशोपनिषद्
३	वेदान्त दर्शन
४	महाभारत
५	भगवद्गीता
६	पंच तन्त्र
७	मनुस्मृति
८	सूर्य्य सिद्धान्त
९	शतपथ ब्राह्मण
१०	Science & religion by Seven Men of Science.
११	Riddle of Universe by E. Heackel.
१२	Death and after by Dr. Annie Becent.
१३	Otherside of death by E. W. Lead beater.
१४	Our Super conscious mind by Edith Lyttleton.
१५	Mind & Matter by G. F. Stort.
१६	The Secret Doctrine by Madame H. P. Blavatsky.

संख्या	नाम पुस्तक
१७	Delusion and Dream by Dr. Sigmund Freud.
१८	Eastern magic & Western Spiritualism by col. H. S. Oleott.
१९	Devachanic plane (The Heaven world) by E. W. Lead beater.
२०	सुभद्रा—वी०-डी० ऋषि कृत ।
२१	Reincarnation by K. N. Sahai.
२२	Psychology by Prof. James.
२३	Clair Voyance by R. O. Slocks.
२४	Science of facial Expression by L. Kalni.
२५	Electrical theory by John Bavedad.
२६	The law of psychic phenomena by T. J. Hudson
२७	Chawby's Idea of Soul.
२८	Man's life in the three world by Dr. Annie Becent.
२९	Republic by Plato.
३०	Evidence for the Supernatural by Tuekell.

संख्या	नाम पुस्तक
३१	The belief in personal immortality by E. S. P. Hayness.
३२	Human personality by Myres.
३३	Drama of life and death by Edward Carpenter.
३४	Automatic writing by A. Verner.
३५	Survial of man by Sir Oliver Lodge.
३६	Table Rapping and automatic writing by A. Verner.
३७	Psychic Research by Prof. Barret.
३८	Religion of Sir Oliver Lodge by J. Makabe.
३९	The case for spirit photography by Sir A. C, Doyle.
४०	Proceedings of Psychic Society of London for 1928.
४१	My life by Dr. A. R. Wallace vol. II
४२	Modern spiritism by Padmore vol. II
४३	Spiritualism by A. Hill.
४४	Master workers by Harold Beglie.
४५	Psychology and life by Munsterberg
४६	The Daily Leader, Allahabad.

संख्या	नाम पुस्तक
४७	The Daily Hindustan Times, Delhi.
४८	Scientific American monthly magazine,
४६	Psyche a quarterly magazine for April 1926.
५०	Mill's utileteranism.
५१	Sidgewick's method of Ethics.
५२	Romans by Paul.
५३	Biology of the spirits by cesare Lombeorso.
५४	Raymond by Sir Oliver Lodge.
५५	Young India Dated 12/9/1929
५६	The new theosophy by Brooks,
५७	The Theosophical Society by Brooks
५८	Spirits of various Kinds by H. P. Blavatsky.
५६	occultism, Semi occultism by Annei Becent.
६०	Autto suggestion by a student of Psychology.
६१	The power of self suggestion by S. Mecomb,

संख्या	नाम पुस्तक
६२	How to mesmerise by J. crates.
६३	Hypnotism simplified by S. Martin
६४	The problem of life and death by S. Parmanand.
६५	In the Outer court by Dr. Annie Becent.
६६	Popular lectures on Theosophy by Dr, Annie Becent.
६७	Essays on spiritual laws by R. W. Emerson.
६८	The Riddle of the universe to-day by J. mecabe.

विषय-सूची

पहला अध्याय

पहला परिच्छेद

दूसरा परिच्छेद

तीसरा परिच्छेद

चौथा परिच्छेद

सं० विषय पृष्ठ

तीसरा परिच्छेद

पांचवां संघ

चौथा परिच्छेद

छठा संघ

मरने के बाद की तीसरी गति

पांचवां परिच्छेद

सातवां संघ

अमैथुनी सृष्टि का व्याख्यान

छठा परिच्छेद

मुक्ति का आनन्द

सांतवां परिच्छेद

आठवां संघ

जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति

तीसरा अध्याय

पहला परिच्छेद

नवां संघ

रूहों का बुलाना

दूसरा परिच्छेद

रूहों के बुलाने के साधनों का विवरण

तीसरा परिच्छेद

तीसरा परिच्छेद

दसवां संघ

रूहों का बुलाना

चौथा परिच्छेद

रूहों का बुलाना

चौथा अध्याय

पहला परिच्छेद

ग्यारहवां संघ

अन्तिम कर्त्तव्य

दूसरा परिच्छेद

अन्तिम कर्त्तव्य

मृत्यु और परलोक

पहला अध्याय

प्रथम परिच्छेद

गंगा तट पर एक सुन्दर तपोभूमि है। वृक्षों की शीतल छाया है। हरी २ दूब से सारी भूमि लहरा रही है। शीतल जल के सुहावने चश्मे जारी हैं। प्राणप्रद वायु मंदगति से बह रहा है। रंग बिरंग के फूल खिल रहे हैं। फल वाले वृक्ष फलों से लदे हुए हैं। तरह २ के पक्षी इधर उधर चहचहा रहे हैं। निदान सारा वन प्राकृतिक दृश्यों से भरपूर होकर भक्ति और वैराग्य का शिक्षणालय बना हुआ है। पवित्र और पुण्य भूमि में एक ऋषि जिनका शुभ नाम "आत्मवेत्ता" ऋषि है, वास करते हुए तपोमय जीवन व्यतीत करते हैं। ऋषि आत्मज्ञानी हैं, आत्मरत हैं, वेदों का मर्म जानते हैं, उपनिषदों के रहस्यों की जानकारी रखते हैं और सदैव आत्म-चिन्ता में निमग्न रहते हैं। अपना जीवन अपने ही उपकार में लगाने के अभ्यासी नहीं, अपितु परोपकार वृत्ति

उनके हृदय में उच्च स्थान रखती है, और इसी वृत्ति को क्रियात्मक रूप देने के लिये सप्ताह में एक वार सत्संग से लाभ उठाने का अवसर सर्वसाधारण को दिया करते हैं। सैकड़ों गृहस्थ नरनारी, वानप्रस्थी और ब्रह्मचारी सत्संग से लाभ उठाने के लिये प्रति सप्ताह उनकी सेवा में उपस्थित हुआ करते हैं। सत्संगों का कार्यक्रम यह होता है कि, प्रथम जिन्हें कुछ पूछना गछना या दुःख सुख कहना होता है, पूछते या कहते हैं। ऋषि उनका उचित समाधान कर दिया करते हैं और जब सत्संग में एकत्रित पुरुप कुछ पूछते नहीं, किन्तु कुछ उपदेश ही सुनना चाहते हैं, तब उन्हें कुछ शिक्षाप्रद उपदेश ही कर दिया करते हैं।

दूसरा परिच्छेद

एक सत्संग की कथा

जाह्नवी तट पर ऋषि आत्मवेत्ता व्यास गद्दी पर विराजमान हैं, और सैकड़ों नरनारी उनके संग से लाभ उठाने के लिये उनके सामने बैठे हैं, आज के संग में दुर्भाग्य से अनेक नरनारी ऐसे ही एकत्रित हैं, जो दुःखों से पीड़ित हैं और अपनी दुःख कथा सुना कर कर्तव्य

की शिक्षा लेने की चिन्ता में हैं, ऋषि की आज्ञा पाकर, उन्होंने अपने संतप्त हृदयों का गुबार निकालने के लिए, अपनी दुःखकथा सुनानी प्रारम्भ की—

रामदत्तः—महाराज ! मेरा हृदय पुत्रशोक से व्याकुल हो रहा है, चालीस वर्ष की आयु तक हम स्त्री पुरुष सन्तान के मुँह देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सके थे। चालीस वर्ष की आयु होने पर एक पुत्र हुआ, वही एक-मात्र संतान थी। बड़े यत्न से उसे पाला पोसा। शिक्षा का प्रबन्ध किया। अब उसकी आयु १८ वर्ष की थी और बनारस विश्व-विद्यालय में पढ़ता था, एफ० ए० की परीक्षा पास कर चुका था, बी० ए० के पहिले वर्ष में आया ही था कि अचानक प्लेग ने आकर घेर लिया। अनेक चिकित्सायें की, अनेक उपाय किए, परन्तु कुछ भी कारगर न हुआ, तीसरे दिन ही प्राण पखेरू अस्थिपंजर रूप पिंजरे को छोड़कर उड़ गये—मृत्यु के अन्यायी हाथों ने हम पर ज़रा भी दया नहीं की। इस बुढ़ापे में हमारे बुढ़ापे की लाठी, हमारे सर्वस्व को अपहरण करके हमको तड़पता ही छोड़ दिया। किसी प्रकार शव का दाह कर्म किया, अब उसकी माता उसी दिन से जल—हीन—मीन की तरह तड़प रही है, न खाती है, न पीती है, कभी २ बेसुध भी हो जाती है। इसी

हालत में उसे छोड़ कर आया हूं कि आप से यह आप बीती कथा कहूं, आप अनुग्रह करके बतलायें कि क्या करें, जिससे चित्त की व्याकुलता दूर हो और हम फिर शान्ति का मुँह देख सकें। (रामदत्त की कथा समाप्त हुई ही थी कि एक दूसरी ओर से एक स्त्री के रोने की आवाज़ आई। सब का ध्यान उधर हो गया और दयालु ऋषि ने सान्त्वना देकर उसका हाल पूछा)।

कृष्णादेवी—(किसी प्रकार धैर्य धारण करके उसने अपना हाल सुनाना शुरू किया)। मेरी आयु इस समय केवल ३० वर्ष की है, १२ वर्ष की आयु में विवाह हुआ था, २० वर्ष की नहीं होने पाई थी कि सास और ससुर दोनों का देहान्त होगया। एक पुत्र हुआ था। ८ वर्ष का हो कर वह भी चल बसा। उसके दुःख को हम भूले भी नहीं थे कि तीन दिन हुये, जब स्वामी रोग-ग्रस्त हुये, उन्हें ऐसा घातक ज्वर चढ़ा, जिसने पीछा ही नहीं छोड़ा, उसी अवस्था में सन्निपात हुआ, बहकी २ बातें करते, शय्या छोड़ कर भागते, डाक्टरों ने देखा, हकीमों ने देखा, सभी ने कुछ न कुछ दवाइयां दीं, परन्तु फल कुछ न हुआ, कल प्रातःकाल मुझे रोने और वैधव्य जीवन का दुःख भोगने के लिये छोड़ कर चल दिये। अब मैं सारे घर में अकेली रह गई, क्या करूँ, कहां

जाऊँ, चित्त ठीक नहीं, कोई ठिकाना नहीं रह रह कर यही जी में आता है कि कुछ खाकर सो रहूँ जिससे यह दुःख का जीवन समाप्त हो जावे ! कठिनता से कृष्णा इतना कहने पाई थी कि फिर आँखों से आँसुओं की धारा प्रवाहित हो गई और हिचकियों ने तांता बाँध दिया, किसी प्रकार उसे लोग तसल्ली दे रहे थे कि एक ओर से फिर रोने का शब्द सुनाई दिया और सब उधर देखने लगे, देखा तो मालूम हुआ कि दो थोड़ी २ आयु के भाई और बहिन रो रहे हैं। कुछ सज्जनों ने उन बालकों को प्रेम से उठाकर ऋषि के सामने बिठलाया और पूछने पर उन्होंने अपना हाल इस प्रकार सुनाया—

कृष्णकान्त और सुभद्रा—अभी हम दोनों अपनी २ शालाओं में शिक्षा पाते हैं और प्रारम्भिक श्रेणियों में ही हैं। हमारे माता पिता जो हमारी बड़े प्रेम से पालना करते थे, कल अचानक विसूचिका-ग्रस्त हुए और दोनों का एक ही दिन में सफ़ाया हो गया, पड़ो-सियों की सहायता से उनकी अन्त्येष्टि की, अब हम दोनों अनाथ हैं, कोई रक्षा करने वाला नहीं, कोई नहीं जो दुःख सुख में हमारी सुध ले। वे बालक इतना ही कह पाये थे कि फिर रोने लगे। उन्हें ऋषि ने ढाढस बंधाया और पीठ पर प्रेम से थपकी दी और वचन दिया कि

तुम्हारी शिक्षा और रक्षा का प्रबन्ध हो जायगा, घबराओ मत। इसी बीच में एक और व्यक्ति आगे बढ़ा और नम्रता से निवेदन किया कि मुझे भी कुछ कहना है— आज्ञा पाकर उसने कहना आरम्भ किया—

जयसिंह—मैं अत्यन्त सुखी गृहस्थ था, मेरे दो पुत्र और एक पुत्री हैं, तीनों सुशील आज्ञाकारी और शिक्षा के प्रेमी हैं। भिन्न २ शिक्षणालयों में शिक्षा पाते हैं, मेरी पत्नी बड़ी विदुषी थी और गृहकार्य में बड़ी चतुर थी, मुझे जब बाहर यात्रा में अथवा कहीं और कुछ कार्य होता तो मैं सदैव शीघ्र से शीघ्र घर आने का प्रयत्न किया करता था, मेरा विश्वास और दृढ़ विश्वास था कि ज्योंही मैं घर पहुँचूंगा गृहपत्नी की मधुर वाणी सुनने और सुप्रबन्ध देखने से सारे कष्ट दूर हो जावेंगे और वास्तव में ऐसा होता भी था, इस प्रकार मैं समझा करता था कि मुझ से बढ़ कर कोई दूसरा सुखी गृहस्थ न होगा पर दुर्भाग्य से वह देवी मुझ से वियुक्त हो गई। कुछ दिन साधारण ज्वर आया था, इसी बीच में चौथे बालक का जन्म हुआ, परन्तु ज्वर ने उसका पीछा न छोड़ा, अभी बालक तीन महीने का भी पूरा न होने पाया था कि उसी ज्वर ने इतना विकराल रूप धारण किया कि गृहलक्ष्मी के प्राण लेकर ही पीछा छोड़ा, अब गृहदेवी

के वियोग ने मुझे पागल सा बना रखा है, जहाँ एक ओर गृहस्थ जीवन मिट्टी में मिला दिखाई देता है, तो दूसरी ओर तीन मास के बालक की रक्षा के विचार से मैं घुला सा जा रहा हूं। चित्त को बहुतेरा समझाता हूँ कि संतान है, धन है, बड़ा परिवार है, ज़िमींदारी है, इलाका है, सब कुछ है सावधानी से रहना चाहिए परन्तु ज्योंही वियुक्ता देवी का स्मरण आता है सारे विचारों पर पानी फिर जाता है और कोई वस्तु भी शान्ति देने में समर्थ नहीं होती और जब यत्न करता हूं कि उसका स्मरण ही न आवे, तो इसमें सफलता नहीं होती। स्मरण आता है और फिर आता है, रोकने से स्मृति और भी अधिक वेगवती हो जाती है, यह दुःख है जिससे मैं सन्तप्त हूँ और यह संताप उठते, बैठते, सोते, जागते, खाते, पीते, सभी समयों में मुझे दुःखी बना देता है, मैं क्या करूँ, जिससे दुःख से निवृत्ति हो।

सन्तोषकुमार—(इसी बीच में बोल उठा) बड़ी २ मिन्नतों के मानने से तो इस ६० वर्ष की आयु में पौत्र का मुँह देखता था, परन्तु वह सुख तीन मास भी रहने नहीं पाया था कि पौत्र ने धोखा दिया और सारे परिवार को क्लेशित करके चल दिया यह दुःख है कि दूर होने में

होने में नहीं आता, हृदय में एक आगसी लग रही है, जिससे मैं जल भुन रहा हूँ, शान्ति का कोसों पता नहीं ।

राधाबाई—(१२ वर्ष की आयु की एक बाल विधवा रोती हुई) निर्दयी माता पिता ने तीन वर्ष हुए, जब मैं अबोध बालिका थी, सबोध तो अब भी नहीं हूँ, मेरा विवाह, हत्यारे धन के प्रलोभन से पड़ कर एक ६० वर्ष के बूढ़े से कर दिया था जिसे देखकर सब उसे मेरा दादा ही समझते थे दो वर्ष तो वह चारपाई पर पड़े पड़े खों-खों करते हुए किसी तरह जीता रहा थोड़ी दूर भी यदि चलना पड़ता तो लाठी टेक कर चलने पर भी हांपने लगता मुँह में दांत न थे बात करते समय साफ़ बोल भी नहीं निकल सकता था यह हालत उसकी पीछे से नहीं हो गई थी किन्तु विवाह के समय भी उसका यही हाल था । अब सप्ताह हुआ जब वह मर गया, उसके मरने का तो मुझे कुछ भी दुःख नहीं हुआ परन्तु जब इधर उधर से नातेदार स्त्रियां पुरुष एकत्र हुये और उन्होंने मेरी अच्छी-अच्छी चूड़ियां मेरे मना करने पर भी तोड़ दीं मेरे अच्छे वस्त्र और ज़ेवर भी उतार लिए और सुन्दर बँधे हुए बालों को भी खोल कर बखेर दिया और कहा कि तूने आते ही अपने पति को खा लिया

और अब तू विधवा है, इसी अवस्था में तुझको सारी आयु व्यतीत करनी पड़ेगी, तब से मेरे दुःख का पारावार नहीं। यही एक आपत्ति नहीं किन्तु और भी अनेक दुःख हैं, कभी कोई दुष्टा स्त्री आकर मेरा धन झपटने के लिये तरह तरह की चिकनी चुपड़ी बातें बनाती हैं, कभी कोई दुष्ट पुरुष आकर मुझे कहता है कि विधवाओं को चारों धाम में जाकर तीर्थ का पुण्य प्राप्त करना चाहिए, यदि तू चले तो मैं तेरे साथ चल सकता हूँ, कभी कोई दुष्ट विधर्मी, साधु के रूप में आकर मुझे फुसलाने का यत्न करता और कहता है कि, यदि तू हिन्दू मत छोड़ दे तो तेरा निकाह अच्छे आदमी के साथ हो सकता है, कभी कोई विषयी आकर मेरे सतीत्व को नष्ट करने की चेष्टा करता है, इन और इसी प्रकार की अनेक आपत्तियों का मुझे प्रति दिन सामना करना पड़ता है, इन आपत्तियों में फंस कर मैं अत्यन्त दुःखित और पीड़ित हो रही हूँ। रह-रह कर अपनी अवस्था पर रोना आता है (राधा इतना ही कह पाई थी कि फिर रोने लगी इसी बीच में एक आदमी आया और अपनी कहानी सुनाने लगा)।

सीतला—(एक दलित जाति का पुरुष) अब की बार महाराज ! हमारे गांवों में चेचक भयंकर रूप में फैली,

सैकड़ों बालकों के सिवाय अच्छे २ जवान स्त्री पुरुष भी उसकी भेंट हो गये, किसी २ तो बूढ़े को भी माता (चेचक) ने आकर मौत का सन्देश सुनाया। मेरे घर में भी चेचक का प्रकोप हुआ और दो प्राणी उसकी भेंट हुए, एक तो छोटी लड़की थी और दूसरा जवान लड़का था। इन भयंकर मौतों ने घर में कुहराम मचा दिया। किसी को भी अपनी सुध बुध नहीं रही। आसपास के लोगों के कहने, सुनने, समझाने, बुझाने से मैंने जी कड़ा किया और अपने को संभाल कर उनको श्मशान में लेजाकर अन्त्येष्टि करने की तय्यारी करने लगा। अपने छोटे भाई को घर भेजा कि जाकर अर्थी और कफ़न के लिए बांस और कपड़ा आदि ले आवे, उस पर जो कुछ बीती वह आपको सुनाता हूँ:—

सावन्ता—(सीतला का छोटा भाई बाज़ार जाते हुये सीतला से बोला) मैं बाज़ार जाता हूँ, तुम ईंधन को श्मशान में भिजवाने का प्रबन्ध करो (यह कह कर सावन्ता चल दिया, अभी रास्ता चलना शुरू ही किया था कि एक आदमी आकर डपट कर बोला)

ब्राह्मण अय्यर—(एक ऊँची जाति का ब्राह्मण)(ज़ोर से) अरे; तू तो पंचम है; तू ब्राह्मणों के रास्ते पर कैसे आया?

सावन्ता—मेरे घर में दो मौतें हो गई हैं, मुझे कफ़न के लिये कपड़ा ले जाने की जल्दी है, इसलिए आप कृपा करके इधर से ही जाने दें।

सुब्राह्मण अय्यर—दो मौतें क्या तेरा सारा परिवार मर जावे तब भी तू इस रास्ते से नहीं जा सकता, क्या तेरे मुर्दों के कारण हम सब अपना प्रायश्चित करेंगे ?

सावन्ता—आप मेरे मुर्दों के कारण क्यों प्रायश्चित करेंगे।

सुब्राह्मण अय्यर—तेरे इस रास्ते पर चलने से यह मार्ग अपवित्र हो जायगा और इस पर जितने भी उच्च जाति के लोग चलेंगे उन्हें सभी को शास्त्र की रीति से प्राय-श्चित करना पड़ेगा। (सावन्ता उसी मार्ग से कुछ आगे बढ़ा ही था कि अय्यर ने खींचकर एक लकड़ी उसके सिर पर मारी, जिससे उसका सिर फट गया। और खून बहने लगा। सावन्ता इसी बुरी हालत में कुछेक राहगीरों की सहायता से बिना कपड़ा लिए लौट आया और उसे इस हालत में देखकर आश्चर्य से लोगों ने सब हाल पूछा और उसकी दुःख की कहानी सुन वहाँ एकत्रित सभी पंचम अपने हिन्दू होने से घृणा करने लगे)

सीतला—(उपर्युक्त आपत्ति की दास्तान सुना कर सीतला ने कहा) महाराज! एक दुःख तो घर में दो मरे

हुओं का था ही, वही हमारे रोने के लिए कम न था, अब यह दूसरी मुसीबत भाई के ज़ख्मी होने से हमारे सिर पर और आ गई, उसकी मरहम पट्टी कराने के लिए जब कोई डाक्टर (उच्च जाति का होने के कारण) नहीं आया तो हमी सब ने अपनी ग्रामीण बुद्धि (जानकारी) के अनुसार मरहम पट्टी कर दी और उसे उसी सिसकती हुई हालत में छोड़कर श्मशान की ओर चले गये और दाह कर्म करके लौटने भी न पाये थे कि रास्ते में दौड़ती और हाँपती हुई स्त्री ने आकर खबर दी कि उस ज़ख्मी भाई की भी मृत्यु हो गई, हम अभागे अब उसी अपने प्यारे और एक मात्र भाई का दाह कर्म करके आ रहे हैं, घर में घुसने को जी नहीं चाहता, घर काटने को दौड़ता सा दिखाई देता है, इसलिये महाराज घर न जाकर आपकी शरण में आया हूं। (आत्मवेत्ता ऋषि ने उसकी दुःखित अवस्था और उच्च जाति के हिन्दुओं के दलितों के साथ दुर्व्यवहार का स्मरण करते और दुःखित होते हुए सीतला को सान्त्वना देते हुए प्रेम से बिठलाया)।

इसके बाद भी सत्संग में एकत्रित पुरुष स्त्रियों में से किसी ने अपनी सम्पति खोए जाने की कथा सुनाई किसी ने अभियोग में हार जाने की चर्चा की, जिसके परिणाम में अपना दरिद्र हो जाना वर्णन किया, किसी

ने बन्धु बान्धवों के दुर्व्यवहार की शिकायत की, निदान इसी प्रकार के कथनोपकथन में संग का सारा समय समाप्त हो गया, ऋषि के वचन सुनने का अवसर किसी को न मिला और क्रियात्मक रूप से आज का संग "मरसिया ख्वानों की मजलिस" ही बना रहा। आत्मवेत्ता ऋषि ने अगले संग में उपदेश देने का वचन देकर आज के संग का कार्य समाप्त करते हुए, संग में उपस्थित नर नारियों को इस प्रकार का आदेश दिया:-

आत्मवेत्ता:—बड़े से बड़े दुःख बड़ी से बड़ी मुसीबतें और कष्ट, करुणानिधान, करुणाकर, करुणामय प्रभु के स्मरण से कम होते हैं और जाते रहते हैं। वही असहायों का सहाय, निराश्रितों का आश्रय, निरावलम्बों का अवलम्बन है। दुनियां के बड़े २ वैद्य, डाक्टर, राजा, महाराजा और साहूकार प्रसन्न होने पर केवल शारीरिक कल्याण का कारण बन सकते हैं, परन्तु मानसिक व्यथा से व्यथित नर नारी के शान्ति का कारण तो वही प्रभु है, जो इस हृदय मन्दिर में विराजमान है और दुनियां के लोगों की तरह उसका सम्बन्ध मनुष्यों से शारीरिक नहीं, किन्तु मानसिक और आत्मिक है, वही है, जो गर्भ में तथा प्रेमी जगहों में जीवों की रक्षा करता है, जहाँ मनुष्यों की बुद्धि भी नहीं पहुँच सकती। एक

पहाड़ का भाग सुरंग से उड़ाया जाता है, पहाड़ के टुकड़े २ हो जाते हैं, एक टुकड़े के भीतर देखते हैं कि एक तुच्छ कीट है, जिसके पास कुछ अन्न के दाने पड़े हैं। बुद्धि चकित हो जाती है, तर्क काम नहीं देता, मन के संकल्प विकल्प थक जाते हैं, यह कैसा चमत्कार है, हम स्वप्न तो नहीं देख रहे हैं ? भला इस कठोर हृदय पत्थर के भीतर यह कीट पहुंचा तो पहुंचा कैसे ? और उसको वहां ये दाने मिले तो मिले कैसे ? कुछ समझ में नहीं आता, मनुष्य के जब अन्तःकरण थक जाते हैं और काम नहीं करते; तो वह आश्चर्य के समुद्र में डुबकियां लेने लगता है, अन्त में तर्क और बुद्धि का हथियार डाल कर मनुष्य बेसुध सा हो जाता है। अनायास उसका हृदय श्रद्धा और प्रेम से पूरित हो गया, ईश्वर की इस महिमा के सामने सिर झुक पड़ा और हृदय से एक साथ निकल पड़ा कि प्रभु ! आप विचित्र हो, आपके कार्य भी विचित्र हैं।

आपकी महिमा समझने में बुद्धि निकम्मी और मन निकम्मा बन रहा है, आप ही अन्तिम ध्येय और आश्रय हो, आपके ही आश्रय में आने से दुःख, दुःख नहीं रहते कष्ट, कष्ट नहीं प्रतीत होते। आपके ही आश्रय में आने से संग के इन नर नारियों के भी कष्ट दूर होंगे।

(आत्मवेत्ता इतना ही कहने पाये थे कि संघ में से एक भक्त का हृदय गद्गद् हो गया, आंखों से प्रेम के आंसू बहने लगे, प्रेम में मग्न होकर अत्यन्त मधुर स्वर से हृदय के भीतरी तह में निहित भावों को, गाकर प्रकट करने लगा, और संग में उपस्थित समस्त नरनारी कुछ इस प्रकार से मग्न हो गये कि प्रत्येक को अपना दुःख कम होता दिखाई देने लगा):—

श्लोक

एक भक्तः—
त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव;
त्वमेव सर्वम् मम देव देव ॥
त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं,
त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम् ।
त्वमेकं जगत् कर्तृ, पातृ प्रहर्तृ,
त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम् ॥

भजन

पितुमात सहायक स्वामि सखा,
तुम ही इक नाथ हमारे हो ।
जिनके कछु और अधार नहीं,

तिनके तुम ही रखवारे हो ॥

सब भाँति सदा सुख दायक हो,

दुख दुर्गुण नाशन हारे हो—

प्रतिपाल करो सिगरे जग का,

अतिशय करुणा उर धारे हो ।

भूलि हैं हम ही तुमको तुम तो,

हमरी सुधि नाहि बिसारे हो ॥

उपकारन को कछु अन्त नहीं,

छिन ही छिन जो बिस्तारे हो ।

महाराज महा महिमा तुम्हरी,

समझें बिरले बुधवारे हो ॥

शुभ शान्ति निकेतन प्रेम निधे,

मन मन्दिर के उजियारे हो ।

यहि जीवन के तुम जीवन हो,

इन प्राणन के तुम प्यारे हो ॥

तुम सो प्रभु पाय 'प्रताप' हरि,

केहि के अब और सहारे हो ॥

तीसरा परिच्छेद

दूसरा संघ

संघ के संगठित हो जाने पर सभी नर नारी ऋषि-वचन सुनने के जिज्ञासु हुए, तब आत्मवेत्ता ऋषि ने प्रतिज्ञानुसार उपदेश आरम्भ किया:—

"जगत् स्वार्थ-मय है"

आत्मवेत्ता ऋषि—जगत् में प्राणियों के वियुक्त होने पर जो दुःख अवशिष्ट परिवार को हुआ करता है, उसका हेतु यह नहीं होता कि वियुक्त प्राणी उन्हें बहुत प्रिय था, बल्कि असली कारण यह होता है कि वियुक्त प्राणियों के साथ अवशिष्ट परिवार के स्वार्थ, जुड़े थे और वियोग स्वार्थ सिद्धि में बाधक होता है, बस असली दुःख इतना ही होता है कि स्वार्थ हानि हुई। जिसे पुत्र का शोक है, वह केवल इस लिए कि उसने पुत्र को बुढ़ापे की लाठी समझ रक्खा था। पुत्र क्या मरा यानी उस के बुढ़ापे की लाठी छिन गई। अब चिन्ता केवल इस बात की है कि बुढ़ापे में सहारा कौन देगा। जिसे माता पिता का दुःख है, वह भी अपने ही स्वार्थ के लिए कि अब उस का पालन पोषण कौन करेगा। जिसे स्त्री का दुःख है, वह भी केवल अपने ही स्वार्थ के लिए कि जो सुख

स्त्री से मिला करता था, वह अब नहीं मिलेगा। अतः यह स्पष्ट है कि जिसे मृत्यु का शोक कहते हैं वह शोक असल में बन्धु-बान्धवों के लिए नहीं, किन्तु अपने ही स्वार्थ में बाधा पहुँचने से किया जाता है।

"याज्ञवल्क्य का उपदेश"

याज्ञवल्क्य ने अपनी पत्नी मैत्रेयी को यह उपदेश कितने सुन्दर शब्दों में दिया था (१):—

याज्ञवल्क्य—अरे मैत्रेयि! निश्चय पति की कामना के लिये पत्नी को पति प्रिय नहीं होता, किन्तु अपनी कामना के लिये पति प्रिय होता है ॥ १ ॥

निश्चय भार्या की कामना के लिए पति को भार्या प्रिय नहीं होती, किन्तु अपनी कामना के लिये ही भार्या प्रिय होती है ॥ २ ॥

निश्चय पुत्रों की कामना के लिए (माता पिता को) पुत्र प्रिय नहीं होते, किन्तु अपनी कामना के लिए ही पुत्र प्रिय होते हैं ॥ ३ ॥

---

(१) नवा अरे पत्युः कामाय पति प्रियो भवति,
आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति ॥ १ ॥
नवा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवति,
आत्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति ॥ २ ॥

निश्चय धन की कामना के लिये (मनुष्य को) धन प्रिय नहीं होता, किन्तु अपनी कामना के लिये धन प्रिय होता है ॥४॥

निश्चय ब्राह्मण की कामना के लिये (मनुष्य को) ब्राह्मण प्रिय नहीं है, किन्तु अपनी कामना के लिये ब्राह्मण प्रिय होता है ॥५॥

निश्चय क्षत्रिय की कामना के लिए (मनुष्य को) क्षत्रिय प्रिय नहीं होता, किन्तु अपनी कामना के लिए ही क्षत्रिय प्रिय होता है ॥६॥

निश्चय लोकों की कामना के लिए (मनुष्य को) लोक प्रिय नहीं होते, किन्तु अपनी कामना के लिए ही लोक प्रिय होते हैं ॥७॥

नवा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति,
आत्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति ॥ ३ ॥
नवा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवति,
आत्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति ॥४॥
नवा अरे ब्राह्मणः कामाय ब्रह्म प्रियं भवति,
आत्मनस्तु कामाय ब्रह्म प्रियं भवति ॥५॥
नवा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रियं भवति,
आत्मनस्तु कामाय क्षत्रं प्रियं भवति ॥६॥

निश्चय देवों की कामना के लिये (मनुष्य को) देव प्रिय नहीं होते, किन्तु अपनी कामना के लिए देव (विद्वान्) प्रिय होते हैं ॥८॥

निश्चय भूतों (प्राणी-अप्राणी) की कामना के लिए (मनुष्य को) भूत प्रिय नहीं होते, किन्तु अपनी कामना के लिए ही प्रिय होते हैं ॥६॥

निश्चय सबकी कामना के लिए (मनुष्य को) सब प्रिय नहीं होते, किन्तु अपनी कामना के लिए ही सब कुछ प्रिय होते हैं ॥१०॥

"मृत्यु का दुःख"

आत्मवेत्ता—इस सम्पूर्ण उपदेश का सार यही है कि समस्त प्राणी और अप्राणी केवल अपनी ही कामना के लिए मनुष्य को प्रिय होते हैं। यदि मनुष्य में किसी प्रकार से यह योग्यता

नवा अरे लोकानां कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति,
आत्मनस्तु कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति ॥७॥
नवा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया भवन्ति,
आत्मनस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति ॥८॥
नवा अरे भूतानां कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति,
आत्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति ॥६॥
नवा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति,
आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति ॥१०॥
(बृहदारण्यकोपनिषद् ४।५ ६)

आजाय कि वह अपने सम्बन्धियों, स्त्री पुत्रादि के साथ जो उसने कामना जोड़ी हुई है, उसे पृथक् कर लेवे, तो क्या उस समय भी मनुष्य को किसी की मृत्यु का दुःख हो सकता है ! इसका निश्चित उत्तर यही है कि फिर दुःख कैसा ? दुःख तो सारा स्वार्थ हानि ही का होता है—यदि वियुक्त और अवशिष्ट दोनों के बीच में स्वार्थ का सम्बन्ध न हो, तो फिर किसी को मृत्यु क्लेशित नहीं कर सकती। जगत् में प्रति दिन सहस्रों मनुष्य उत्पन्न होते और मरते हैं। परन्तु हमें न उनके पैदा होने का हर्ष होता और न उनके मरने का शोक। क्यों हर्ष और शोक नहीं होता ? कारण स्पष्ट है कि उनकी उत्पत्ति के साथ हम अपने स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं जोड़ते, इसलिये उनके जन्म का हमें कुछ भी हर्ष नहीं होता और चूँकि उनके जीवनों के साथ भी हमारा स्वार्थ जुड़ा हुआ नहीं होता, इसलिये उनके जीवनों की समाप्ति (मृत्यु) का भी हमें कुछ शोक नहीं होता। न्यूयार्क, लण्डन, पैरिस आदि नगरों में प्रति दिन सैकड़ों मनुष्य मरा करते हैं, क्यों हम उनका मातम नहीं करते ? केवल इसलिये कि उनसे हमारे स्वार्थ का कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता। परन्तु न्यूयार्क आदि नगरों में सैकड़ों मनुष्य होंगे, जो उनके मरने का शोक करते

होंगे। क्यों शोक करते हैं ? इसलिये कि उनका स्वार्थ उन मरने वालों के साथ जुड़ा हुआ होता है। निष्कर्ष यह है कि मृत्यु-शोक का कारण स्वार्थ और एक मात्र स्वार्थ है—इसलिए स्वार्थ क्या है, इस पर थोड़ा विचार करना होगा।

चौथा परिच्छेद

स्वार्थ–मीमांसा

आत्मवेत्ता—स्वार्थ का तात्पर्य है (स्व+अर्थ) अपनी कामना, अपनी ग़रज "स्व" (Self) और "आत्मा" पर्याय वाचक हैं—दोनों का एक ही अर्थ है, इसलिये "अपना अर्थ" या "अपनी आत्मा का अर्थ" इनमें कुछ अन्तर नहीं है, यह दोनों समानार्थक पद हैं।

स्वार्थ तीन प्रकार का है:—

"स्वार्थ के भेद"

(१) उत्कृष्ट (२) मध्यम (३) निकृष्ट। उत्कृष्ट स्वार्थ वह है, जिसमें आत्मा स्वच्छ रूप में रह कर अपने अर्थ की ओर प्रवृत्त होता है, (२) मध्यम स्वार्थ वह है, जिसमें आत्मा मन और इन्द्रिय से युक्त होकर सम्मिलित अर्थ की सिद्धि करता है, (३) निकृष्ट स्वार्थ वह है, जिसमें आत्मा मन और

इन्द्रिय से युक्त ममता के वशीभूत होकर सम्मिलित अर्थ की सिद्धि करता है। निकृष्ट स्वार्थ ही वह वस्तु है, जिससे मनुष्य को मृत्यु दुःख से दुःखी होना पड़ता है। प्रत्येक प्रकार का स्वार्थ ठीक २ समझा जा सके. इसलिये उसका कुछ विवरण यहाँ दिया जाता है।

"उन भेदों की व्याख्या"

आत्मा की दो प्रकार की वृत्ति होती है—एक का नाम है अन्तर्मुखी वृत्ति, दूसरे को वहिर्मुखी वृत्ति कहते हैं। अन्तमुखी वृत्ति का भाव यह है कि आत्मा केवल आत्मा+परमात्मानुभव में रत हो, इसी को निदिध्यासन (Intuitional perception or Realization) कहते हैं। इसी का नाम "श्रेय" या "निवृत्तिमार्ग" है। परन्तु जब आत्मा अपने भीतर नहीं, किन्तु बाहर काम करता है, तब वहिर्मुखी वृत्ति वाला कहलाता है। उसका क्रम यह है कि आत्मा बुद्धि को प्रेरणा करता है, बुद्धि मन को, मन इन्द्रियों को गति देता है, इन्द्रियां विषय में प्रवृत्त हो जाती हैं, इसी को श्रवण और मनन कहते हैं, इसी का नाम 'प्रेय' या 'प्रवृत्ति मार्ग' है।

"प्रवृत्ति और निवृत्तिमार्ग"

मनुष्य के लिये इन दोनों मार्गों की उपयोगिता है। यदि ये दोनों मार्ग ठीक रीति से काम में लाये जावें तो प्रवृत्ति मार्ग निवृत्ति का

साधक होना है। उपनिषदों में जहाँ प्रवृत्ति मार्ग की निन्दा की गई है, उसका भाव केवल यह है कि जो मनुष्य केवल प्रवृत्ति मार्ग को ही अपना उद्देश्य बनाकर निवृत्ति मार्ग की अवहेलना करते हैं, वे ही उपनिषदों की शिक्षानुसार तिरस्कार के योग्य होते हैं। इस बात को उपनिषदों ने असन्दिग्ध शब्दों में कहा है देखो—

न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥

(कठोपनिषद् २ : ६)

अर्थात् अज्ञानी पुरुषों को जो प्रमादग्रस्त और धन के मोह से मूढ़ हो रहे हैं, परलोक की बात पसन्द नहीं आती, ऐसे पुरुष जो केवल इसी लोक को मानने वाले (प्रवृत्ति मार्गगामी) हैं और परलोक (निवृत्ति मार्ग) को नहीं मानते, उन्हें बार २ मृत्यु का ग्रास बनना पड़ता है। परलोक का विचार छोड़ जो केवल इसी लोक को अपना सब कुछ समझने लगते हैं, उन्हें सांसारिक मोह जकड़ लेता है और मोह ग्रस्त होकर उन्हें अपने उद्देश्य से भी पतित हो जाना पड़ता है। इस विषय में एक बड़ी शिक्षाप्रद आख्यायिका नारद की है:—

"नारद की आख्यायिका" में एक बार नारद ने कृष्ण महाराज की सेवा में उपस्थित होकर उन से आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहा। महाराज ने उन्हें अधिकारी नहीं नहीं समझा और इसी लिये उन्हें आत्मोपदेश नहीं किया। दूसरे अवसर पर आकर नारद ने फिर वही प्रश्न किया। महाराज ने उत्तर न देकर नारद से कहा कि चलो कहीं भ्रमण कर आवें। नारद प्रसन्नता से रज़ामन्द होगया और इस प्रकार दोनों चल दिये। कुछ दूर पहुंच कर एक ग्राम दिखाई दिया। कृष्ण ने नारद से कहा कि जाओ इस ग्राम से पीने को पानी ले आओ। नारद चले गये। एक कुएँ पर पहुँचे, जहाँ कछ स्त्रियाँ पानी भर रही थीं, उनमें एक अति रूपवती सुशील कन्या भी थी। नारद ने उस से जल मांगा। उसने बड़ी प्रसन्नता से नारद को जल दिया। परन्तु नारद जल लेकर वहाँ से चले नहीं और जब वह कन्या जल लेकर अपने घर की ओर चली, तो उस के पीछे हो लिये। कन्या ने घर पहुँच कर अपने पीछे नारद को आता देख कर समझा कि यह ब्रह्मचारी भूखा प्रतीत होता है, उसने आदर से नारद को बिठला कर भोजन कराया. परन्तु नारद भोजन करके भी वहाँ से नहीं टले। इसी बीच में कन्या का पिता जो कहीं बाहर गया हुआ

था, लौट कर घर आया और उसकी नारद से भेंट हुई। जब बातें ढंग की होने लगीं, तब नारद ने सुअवसर समझ कर कन्या के पिता से कहा, कि इस कन्या का विवाह मेरे साथ करदो। कन्या के पिता ने योग्य वर समझ कर विवाह कर दिया। उस कन्या के सिवा घर में और कोई बालक या स्त्री नहीं थी, इस लिये कन्या के पिता ने नारद से कहा कि यहीं रहो। नारद उसी घर में प्रसन्नता से रहने लगे कुछ काल के बाद पिता का देहान्त होगया, अब यह युगल उस घर में मालिक के तौर पर रहने लगे। गृहस्थधर्म का पालन करते हुए नारद के होते-होते तीन पुत्र होगए। इसी बीच में वर्षा अधिक होने से बाढ़ आगई और पानी गाँव में भी आ गया और ग्राम निवासी अपने-अपने घर छोड़ कर जिधर तिधर जाने लगे। नारद को भी कहीं चलने की चिंता हुई और उन्होंने अपने छोटे दो बच्चों को कन्धों पर बिठला कर एक बड़े पुत्र को एक हाथ से पकड़ा और दूसरे हाथ से स्त्री का हाथ पकड़ कर पार होने के लिये पानी में चल दिये। पानी का ज़ोर था, पुत्र अपने को सम्भाल नहीं सका, उसका हाथ नारद के हाथ से छूट गया और वह पानी में बह गया। नारद अपनी विवशता देख कर सन्तोष करके आगे चल दिये

कि पानी ने फिर धकेला और नारद गिरने को हुये परन्तु किसी तरह से उन्हों ने अपने को तो सम्भाला, परन्तु इस संघर्षण में उन के कंधों से बाकी दो पुत्र भी पानी में गिर कर बह गये।

अब उनके साथ केवल उनकी स्त्री रह गई। नारद को उन पुत्रों के बहने का दुःख तो बहुत हुआ, परन्तु विवशता के कारण अपनी स्त्री और अपने जी को समझा कर आगे चल दिये कि स्त्री तो मौजूद ही है, और भी पुत्र होजावेंगे। जब वे दोनों युगल इस प्रकार जा रहे थे कि अचानक पानी की एक प्रबल झपेट ने स्त्री को भी बहा दिया। नारद बहुत हाथ पाँव मार कर किसी प्रकार पानी से निकल कर उसी स्थान पर पहुंचे जहाँ से कृष्ण महाराज के लिये पानी लेने ग्राम को चले थे, तब उन का माया मोह छूटा और वह वहीं पश्चाताप करने लगे कि मैं ग्राम में किस काम के लिये गया था और वहाँ जाकर किस जगड्वाल में फंस गया। परन्तु "अब पछताये का होत है, चिड़ियाँ चुग गईं खेत"।

आख्यायिका कितनी अच्छी शिक्षा देती है कि मनुष्य जब उद्देश्य को भुला कर संसार के माया मोह में फंस जाता है तब उसकी ऐसी ही दुर्दशा होती है

जैसी नारद की हुई। इस लिये उपनिषद् ने शिक्षा यह दी है कि मनुष्य को श्रेय मार्ग को भुला कर, केवल प्रवृत्ति मार्ग को अपना उद्देश्य नहीं बना लेना चाहिये किन्तु प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों को उनका उचित स्थान देना चाहिये। तभी मनुष्य का कल्याण हो सकता है।

इस पर कोई कह सकते कि उपनिषदों ने जिस प्रकार प्रवृत्ति की निन्दा की है, उसी प्रकार केवल निवृत्ति की निन्दा क्यों नहीं की? इस का समाधान यह है कि मनुष्य प्रवृत्ति में तो उत्पन्न ही होता है, वह उसे अनायास सिद्ध होती है। परन्तु निवृत्ति मार्ग यत्नाभाव से प्राप्त ही नहीं होसकता। कोई मनुष्य सीधा निवृति में नहीं जासकता, उसे सदैव प्रवृत्ति से निवृत्ति में जाना पड़ता है। जब कोई आरम्भ से निवृत्ति पथगामी हो ही नहीं सकता, तो फिर केवल निवृत्ति पथ के लिए उपनिषदों को कुछ कहने की आवश्यक्ता ही नहीं हो सकती थी।

सन्तोष कुमार—फिर क्यों यम ने नचिकेता से कहा कि "विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये" अर्थात् मैं नचिकेता को श्रेय (निवृत्ति) पथगामी मानता हूँ।

आत्मवेत्ता—इसका भाव यह है कि यम ने नचिकेता

को समझा कि वह श्रेय मार्ग का निरादर नहीं करता, किन्तु उसे मुख्य समझ कर प्रवृत्ति मार्ग से जिसमें नचिकेता थी ही, निवृत्ति मार्ग का इच्छुक है।

आत्मवेत्ता ऋषि—(फिर अपना व्याख्यान प्रारम्भ कर के बोले) निवृत्ति और प्रवृत्ति मार्ग को ठीक समझने के लिए अवस्थाओं का ज्ञान होना आवश्यक है उसका बहुत स्थूल विवरण यहां दिया जाता हैः—

अवस्थायें तीन हैं (१) जागृत (२) स्वप्न (३) सुषुप्त। इनमें से जब मन और इन्द्रिय दोनों

अवस्थायें

अपने क्रम से अपना २ काम करती हैं, तब उसे 'जाग्रतावस्था' कहते हैं। परन्तु जब इन्द्रियों का काम बन्द होकर केवल मन का काम जारी रहता है, तब उसे 'स्वप्नावस्था' कहते हैं और जब केवल आत्मा अपने ही भीतर काम करता है और मन का काम भी बंद हो जाता है, तब उस अवस्था को 'सुषुप्त' कहते हैं। निवृति प्रवृति मार्गों और उसके साथ ही जागृत, स्वप्नादि अवस्थाओं पर विचार करने से स्वार्थ के भेदों का कुछ रूप समझ में आता है जब जागृत में, सुषुप्तावस्था की सी अवस्था हो जावे अर्थात् मन और इन्द्रिय बिल्कुल निष्क्रिय हो जावे, तब वह स्वार्थ का उत्कृष्ट रूप होता है परन्तु जब मन और इन्द्रिय दोनों या केवल मन

काम करे परन्तु ममता के वश में न हो तो वह स्वार्थ का मध्यम रूप होता है। स्वार्थ का निकृष्ट रूप समझने के लिये ममता का ज्ञान होना चाहिये—

ममता क्या है?

वेद और उपनिषद् की शिक्षा यह है कि मनुष्य संसार की प्रत्येक वस्तु को ईश्वर प्रदत्त समझ कर प्रयोग में लावे, *इसका फल यह होता है कि संसार की प्रत्येक वस्तु के लिये मनुष्य की भावना यह होती है कि वह उसकी नहीं है, किन्तु ईश्वर की है और प्रयोग और केवल प्रयोग के लिये उसे मिली हुई है, और इस अवस्था में स्वामी को अधिकार है कि अपनी वस्तु जब चाहे ले ले। प्रयोक्ता को उसके देने में "किन्तु परंतु करने" की गुंजाइश नहीं रहती। उदाहरण के लिये कल्पना करो कि रामदत्त की एक पुस्तक है और उसे पढ़ने के लिये सन्तोष कुमार ने ले लिया है। सन्तोष कुमार उस पुस्तक को पढ़ता है। यह पुस्तक उसे बहुत रुचिकर मालूम देती है और उसका जी नहीं चाहता कि समाप्त करने से पहले छोड़े। परंतु पुस्तक के समाप्त होने से पहले पुस्तक के स्वामी रामदत्त को उसकी जरूरत पड़ी और रामदत्त ने पुस्तक सन्तोष कुमार से मांगी। अब बतलाओ कि सन्तोष-

---

* तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा ! यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र १।

कुमार का क्या कर्त्तव्य है। उसे वह पुस्तक रामदत्त को दे देनी चाहिये या नहीं?

जयसिंह—अवश्य दे देनी चाहिये।

कृष्णा देवी—उसे दे ही नहीं देनी चाहिये, किन्तु प्रसन्नता के साथ धन्यवाद पूर्वक पुस्तक को लौटा देना चाहिये।

आत्मवेत्ता—ठीक है। आप लोगों का उत्तर यथार्थ है, परन्तु एक बात बतलाओ कि यदि सन्तोष कुमार यह भुलाकर कि पुस्तक का स्वामी रामदत्त है, यह कहने और समझने लगे कि यह पुस्तक मेरी है और पुस्तक रामदत्त को न लौटावे तो इसका फल क्या होगा?

कृष्णादेवी—इसका फल यह होगा कि पुस्तक को तो रामदत्त बल पूर्वक छीन ही लेगा, क्योंकि पुस्तक उसकी है और सन्तोष कुमार को पुस्तक के छिन जाने से व्यर्थ में दुःख उठाना पड़ेगा।

आत्मवेत्ता—अच्छा कोई विधि है, जिससे सन्तोषकुमार इस दुःख उठाने से बच जावे।

जयसिंह—एक मात्र उपाय यह है कि, सन्तोष कुमार प्रसन्नता से, पुस्तक को, पुस्तक के स्वामी को, लौटा देवे।

आत्मवेत्ता—ठीक है। सन्तोषकुमार को इस उदाहरण में दुःख उठाना पड़ा ?

कृष्णादेवी—केवल इसलिये कि उसने पुस्तक के सम्बन्ध में यह भावना पैदा कर ली थी कि पुस्तक मेरी है—

"मृत्यु के दुःख का कारण ममता"

आत्मवेत्ता—ठीक है इसी भावना का नाम "ममता" है, पुस्तक के सदृश संसार की प्रत्येक वस्तु जिसमें धन संपति ज़िमीदारी, राज्य, पुत्र, पौत्र, बन्धु, बान्धव सभी शामिल हैं, ईश्वर के हैं और मनुष्य को केवल प्रयोग के लिये मिले हैं, उन्हें ईश्वर जब भी लेना चाहे, प्रयोक्ता को प्रसन्नता से लौटा देने चाहियें, यदि प्रयोक्ता उसमें ममता का सम्बंध जोड़ कर कि यह धन मेरा है, संपति मेरी है, राज्य मेरा है, पुत्र मेरा है, पौत्र मेरा है, इत्यादि, उन्हें न देना चाहेगा, तो भी, पुस्क के स्वामी के सदृश, इन वस्तुओं का स्वामी ईश्वर, उन्हें बल प्रयोग कर के ले लेगा और उस समय संतोष कुमार की भांति, प्रयोक्ता को, क्लेश भोगना पड़ेगा—क्या यह ठीक है ?

"रामदत्त आदि सभी उपस्थित गण" एक स्वर से बोले कि हाँ ठीक है—

आत्मवेत्ता—तो क्या फिर वही क्लेश आप लोग नहीं भोग रहे हैं ?

उपस्थित गण—(नीची गर्दन करके प्रथम चुप हो गये फिर आत्मवेत्ता के दुबारा पूछने पर बहुत धीमे स्वर से बोले) ठीक है महाराज—यही क्लेश हम भी भोग रहे हैं।

आत्मवेत्ता—फिर जब आप समझ गये कि आप, अनुचित रीति से, ममता के वश होकर, क्लेश भोग रहे हैं, तो प्रसन्नता के साथ इस क्लेश को दूर कर देना चाहिये, मनुष्य ममता ही के वश होकर तो इस प्रकार के कार्य करता है, जिससे उसे दुःखी होना पड़ता है। इसी ममता के वश में होने का नाम "निकृष्ट स्वार्थ" है। यही "निकृष्ट स्वार्थ" है जिससे मनुष्य को धन सम्पत्ति के चले जाने या बन्धु-बान्धवों की मृत्यु से दुःख उठाना पड़ता है। इसके सिवा एक बात और भी है यदि कुछेक लोगों के कथनानुसार, इस प्रकार दुःखित और क्लेशित होने का, गई वस्तु की पुनः प्राप्ति का यत्न माना जावे तो भी यह यत्न वृथा है। यह बात पिता पुत्रादि के सम्बन्ध की वास्तविकता का ज्ञान होने से स्पष्ट होगी।

पांचवां परिच्छेद

सम्बन्ध का वास्तविक रूप

पिता पुत्र, बन्धु-बान्धवों के सम्बन्ध का वास्तविक रूप क्या है ? यह बात जानने के लिये, सम्बन्ध की सत्ता पर विचार करना चाहिये। क्या पिता पुत्र का सम्बन्ध दोनों की आत्माओं में है ? उत्तर यह है, कि नहीं, क्योंकि पिता पुत्र के सम्बन्ध के लिये आयु का भेद अनिवार्य है। परन्तु आत्मायें सब एक सदृश नित्य हैं। उनका न आदि है और न अन्त। इस लिए यह सम्बन्ध आत्माओं में, आयु का भेद न होने से नहीं हो सकता। फिर क्या यह सम्बन्ध शरीर और शरीरों में है ? नहीं, यह भी नहीं हो सकता, क्योंकि मरने के बाद भी शरीर बाकी रहता है, परन्तु कोई उसे पिता या पुत्र समझ कर घर में नहीं रखता। किन्तु शरीर से आत्मा के निकलते ही जब कि उसकी संज्ञा शरीर से "शव" हो जाती है, यथा संभव शीघ्र दाह करने की प्रत्येक चेष्टा किया करता है। यदि शरीर ही पिता या पुत्र हो, तो उसके दाह करने से पिता या पुत्र के घात का पाप दाह करने वालों को होना चाहिये। परन्तु ऐसा नहीं होता,

किन्तु शव का दाह कर्त्तव्य (१) और पुण्य (२) बतलाया गया है। अतः यह स्पष्ट है कि पिता पुत्रादि का सम्बन्ध न तो केवल आत्मा आत्मा में है और न केवल शरीर शरीर में। फिर यह सम्बन्ध किस में है? इसका उत्तर यह है कि यह सम्बन्ध शरीर और आत्मा के संयोग होने पर स्थापित होता और वियोग होने पर टूट जाता है। आत्मा और शरीर के संयोग का नाम ही पिता पुत्रादि हुआ करता है। एक गृहस्थ के घर में पुत्र का जन्म होता है। इस जन्म होने का अर्थ क्या है? शरीर और आत्मा का संयोग, इसी संयुक्त द्रव्य का नाम ही पुत्र होता है। इस प्रकार जब शरीर और आत्मा के संयोग का नाम ही पिता पुत्रादि हुआ करता है, तो इस सम्बन्ध के टूट जाने पर इस सम्बन्ध की समाप्ति हो

---

(१) भस्मान्तँ शरीरम्। (यजु० ४०।१७) अर्थात् शरीर के लिये अन्तिम कृत्य भस्म करना है—इसी लिये इस संस्कार का नाम अन्त्येष्टि अर्थात् अन्तिम यज्ञ रक्खा गया है। इसी को नरमेध भी कहते हैं।

(२) एतद्वै परमं तपो यत् प्रेतमरण्यं हरन्ति। एतद्वै परमन्तपोयत् प्रेतमग्नावभ्यादधति। (बृहदारण्यकोपनिषद् अ० ५॥ ब्रा० ११ क० १) अथवा शव का श्मशान में ले जाना और उसका दाह करना साधारण तप नहीं, किन्तु परम तप है।

जाती है यह परिणाम निकालना अनिवार्य्य है। इस प्रकार जब मृत्यु (शरीर और आत्मा का वियोग) होने पर सम्बन्ध टूट जाता है और पिता पुत्रादि की कोई सत्ता बाकी नहीं रहती, तो फिर दुःखित और क्लेशित होना रूप, यत्न किसकी पुनः प्राप्ति के लिए किया जा सकता है ?

एक फ़ारसी के कवि "उर्फ़ी" ने बहुत अच्छी तरह से इसी सिद्धान्त के प्रदर्शित करने का यत्न किया है। उसने लिखा है; यदि रोने से प्रियतम मिल जाता, तो सौ वर्ष तक इसी आशा में रोया जा सकता है (१) निष्कर्ष यह है कि मरने पर मरने वाले के लिये रोना पीटना, दुःखित और क्लेपित होना व्यर्थ और सर्वथा अनावश्यक है, बल्कि इसके विपरीत अवशिष्ट परिवार को यह सोचते हुये समझना चाहिये कि एक वस्तु ईश्वर की थी, उसने उसे जब चाहा ले लिया और उसके इस प्रकार उस वस्तु को ले लेने से हम पर जो उस से सम्बन्धित, उत्तरदायित्व रूप बोझ था, कम हो गया और परिणाम में हमें आंशिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई

(१) फ़ार्सी का शेर इस प्रकार है—

उर्फ़ी अगर ब गिर्य मयस्सर शुदे वेसाल।
सद साल मे तवां बतमन्ना ग्रीसतन॥

इस स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये हर्ष करना चाहिये न कि मातम।

आत्मवेत्ता ऋषि ने यहां पर अपना उपदेश समाप्त किया। उपदेश की समाप्ति पर श्रोताओं के मुखड़ों से एक प्रकार की गम्भीरता प्रकट हो रही थी, जितने वे दुःखित थे उसका बहुत अंश दूर हो चुका था और बाकी रहे दुःख की भी निस्सारता समझते हुए उसके दूर करने के लिये वे यत्नवान् प्रतीत होते थे और जो कुछ उन्होंने उपदेश सुना था, उस पर विचार करते हुए और भी कुछ उपदेश शङ्काओं के समाधान रूप में, सुनना चाहते थे। इसी उद्देश्य से श्रोताओं में से एक बोल उठाः—

प्रेमतीर्थ—(इस उपदेश के लिए कृतज्ञता प्रकाशित करते हुए एक प्रश्न करता है) आपने जो वेद की शिक्षा यह बतलाई है कि मृत्यु का दुःख केवल ममता का परिणाम है, तो क्या इसका तात्पर्य यह है कि मृत्यु दुःखप्रद ही नहीं है और मरने वाले को कुछ क्लेश ही नहीं होता ?

आत्मवेत्ता—हाँ, यह ठीक है कि स्वयमेव मृत्यु क्लेश-प्रद नहीं है और आगामी संघ में इस शिक्षा के सम्बन्ध में, कुछ कहा जायगा।

छठा परिच्छेद

तीसरा संघ

मृत्यु का वास्तविक रूप

सुन्दर और सुहावनी तपोभूमि में, जहाँ सुख और शांति का वायु प्रवाहित हो रहा है, आत्मवेत्ता ऋषि व्यासासन पर विराजमान हैं। अनेक नरनारी एकत्रित हैं और प्रत्येक के हृदय में एक विलक्षण प्रकार की उत्सुकता है कि आज वे प्रश्नों के प्रश्न, जगत् के महत्तम प्रश्न, मृत्यु के सम्बन्ध में एक ऐसे महापुरुष से कुछ सुनने का सौभाग्य प्राप्त करने वाले हैं, जो प्रश्न के सम्बन्ध में कुछ कहने के अधिकारी हैं। और इसलिये प्रत्येक नर नारी, टकटकी बांधे हुए ऋषि की ओर देख रहे हैं, कि कब मुखारविन्द से उपदेश आरम्भ होता है—

आत्मवेत्ता ऋषि ने अपना मौनव्रत को तोड़ा और संघ में, नर नारियों की उपदेशामृत सुनने की उत्सुकता का अनुभव करके, इस प्रकार कहना शुरू किया:—

आत्मवेत्ता—मृत्यु क्या है? इसके सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें अनेक सम्प्रदायों में प्रचलित हैं। परन्तु जीवन और मृत्यु का वास्तविक रूप यह है कि अनेक

नाड़ी और नसों से बने हुए, शरीर और अमर आत्मा में संयोग का नाम "जीवन" है और उन्हीं के वियोग का नाम "मृत्यु" है। अपने २ स्वरूप से जीवन और मृत्यु कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसमें उत्तरदायित्व पूर्ण कर्तृत्व का आरोप किया जा सके। वे एक प्रकार की क्रियायें हैं और इसलिए उनके परिणाम पर ध्यान देकर उन्हें दुःख या सुखप्रद कहा जाता है। उसी मृत्यु के सम्बन्ध में अब कुछ बातें बताई जाती हैं:—

"मृत्यु सुखप्रद है"

सबसे पहिली बात जो मृत्यु के सम्बन्ध से समझ लेने की है, वह यह है कि, परिणाम की दृष्टि से मृत्यु दुःखप्रद नहीं किन्तु सुखप्रद है। मृत्यु किस प्रकार सुखप्रद है? यह सिद्धान्त कुछ व्याख्या चाहता है, और व्याख्या इस प्रकार है:—जीवन और मृत्यु को, दिन और रात की सदृश कहा जाता है। यह सभी जानते हैं कि दिन काम और रात्रि आराम के लिये है। मनुष्य दिन में काम करता है। काम करने से उसके अन्तःकरण (मन बुद्धि आदि) और बाह्य करण आँख, नाक, हाथ, पांव आदि सभी थक कर काम करने के अयोग्य हो जाते है और तब वह कुछ नहीं कर सकता। इसी प्रकार, शक्ति का ह्रास होने पर, रात्रि आती है। दिन में जहाँ मनुष्य

के शरीर के भीतर और बाहर की सभी इन्द्रियां, अपना अपना काम तत्परता से करती थीं। अब रात्रि आने पर मनुष्य गाढ़ निद्रा में सो जाता है और अन्तःकरण क्या, और बाह्यकरण क्या, सभी शान्त और पुरुषार्थ-रहित हो जाते हैं। काम करने से जहाँ शक्ति खर्च हो कर कम होती है, काम न करने से खर्च बन्द हो जाने के कारण शक्ति पुनः एकत्र होने लगती है। इस प्रकार खर्च हुई शक्ति को प्राणी पुनः एकत्र कर लेता है, और फिर दिन आने पर पुरुषार्थमय हो कर उस एकत्रित शक्ति को फिर व्यय कर डालता है। फिर रात्रि आती है और पुनः शक्ति का भण्डार भर देती है। यह क्रम अनादि काल से चला आता है और अनन्तकाल तक चलता रहता है—

गायत्री—(संग में उपस्थित एक देवी) रात्रि में काम न करने से शक्ति किस प्रकार एकत्र हो जाती है?

आत्मवेत्ता—शक्ति रक्त में रहती है और नया रक्त प्रति समय आहार के रूपान्तरित होने से बनता रहता है और रात्रि में शक्ति का व्यय बन्द होने से उस शक्ति की मात्रा बढ़ती रहती है। यह नियम प्राणि और अप्राणि सभी में काम करता है। जब किसी भूमि की पैदावार कम हो जाती है, तो कृषक उसे कुछ काल के

लिये छोड़ देता है और उस में कुछ नहीं बोता। इस प्रकार कुछ अरसे तक भूमि के खाली पड़े रहने से उस में फिर उत्पादिका शक्ति एकत्र हो जाती है और भूमि फिर अन्न पैदा करने योग्य हो जाती है। तब कृषक फिर उस में बोना शुरू कर देता है।

(यह उत्तर देने के बाद आत्मवेत्ता-ऋषि फिर अपना व्याख्यान जारी कर देते हैं)।

आत्मवेत्ता—जिस प्रकार दिन और रात काम और आराम करने के लिए हैं, इसी प्रकार जीवन और मृत्यु-रूपी दिन रात भी काम और आराम करने के लिये ही हैं। मनुष्य जीवन रूपी दिन में काम करता है। यह काम बाल्यावस्था से आरम्भ होकर यौवनावस्था में उच्च शिखर पर पहुँच जाता है। वृद्धावस्था जीवन रूपी दिन का अन्तिम पहर होता है। इस लिए जिस प्रकार सायंकाल होने से पहिले मनुष्य काम करते-करते थक जाता है, अधिक काम करने योग्य नहीं रहता, इसी प्रकार वृद्धावस्था (जीवन रूपी दिन के सायंकाल) के आने पर भी, मनुष्य काम करने के अयोग्य हो जाता है। मस्तिष्क काम नहीं देता, स्मृति खराब हो जाती है हाथ पांव हिलाना दूभर होजाता है; अधिक कहने की जरूरत नहीं, सभी जानते हैं कि बुढ़ापे की अन्तिम

अवस्था में, मनुष्य काम करने के अयोग्य और निकम्मा हो जाता है, चारपाई पर पड़े-पड़े, खों-खों करने के सिवाय और किसी काम का नहीं रहता। वह सारा सामर्थ्य, जो बाल्य और युवावस्था में था, बुढ़ापे में स्वप्न की-सी बात होजाती है। इस प्रकार जब जीवन-रूपी दिन में मनुष्य काम करते-करते थक जाता है और अधिक काम करने के अयोग्य हो जाता है। तब मृत्यु रूपी रात्रि आराम देकर निकम्मापन दूर करने के लिए आती है। जिस प्रकार रात्रि में आराम पाकर प्रातःकाल होने पर मनुष्य नये उत्साह, नये सामर्थ्य, नई स्फूर्ति के साथ उठता है, इसी प्रकार, मृत्यु रूपी रात्रि म, आराम पाकर, मनुष्य जीवन रूपा दिन के प्रातःकाल रूपी बाल्यावस्था में नये उत्साह, नई शक्ति, नये सामर्थ्य और नई स्फूर्ति के साथ उत्पन्न होता है। जहाँ बुढ़ापे में हाथ पाँव हिलाना मुश्किल था, वहाँ बाल्यावस्था इसके सर्वथा विपरीत है। यहाँ बाल काल में सामर्थ्य की इतनी बहुलता है कि बालक को हाथ पांव ठहराना कठिन होता है। यदि उस के हिलते हुये हाथों को पकड़ लो तो वह पाँव हिलाने लगेगा। यदि पांव भी पकड़ लो तो रोने लगेगा। ग़र्ज़ कि जब तक वह अपने हाथ पांव हिलाने में बाधक साधनों को दूर न करलेगा, चैन न

लेगा। इतना परिवर्तन क्यों हो गया? इस का एक मात्र उत्तर यह है, कि मृत्यु रूपी रात्रि ने आराम देकर बुढ़ापे की अकमरायता को, बाल्यावस्था की इस अपूर्व कर्मण्यता में बदल दिया। इस प्रकार हमने देख लिया कि मृत्यु दुःख देने के लिये नहीं, किन्तु आराम और सुख देने के लिए ही आती है। इसी लिए कृष्ण महाराज ने गीता में अर्जुन के प्रति कहा है:—

शरीर वस्त्र की सदृश हैं

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥
(गीता २। २२)

अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य, फटे पुराने वस्त्र छोड़ कर, नए वस्त्रों को ग्रहण कर लिया करता है, इसी प्रकार आत्मा जीर्ण और निकम्मे शरीर को छोड़कर, नया शरीर ग्रहण कर लिया करता है। भला कभी किसी को देखा या सुना है कि पुराने वस्त्रों को, छोड़ कर नए वस्त्रों के ग्रहण करने में, उसे दुःख या क्लेश हुआ हो बल्कि इस के विपरीत यह तो देखा जाता है कि नए वस्त्रों के ग्रहण करने से सभी प्रसन्न होते हैं। फिर भला आत्म, निकम्मे और जर्जरित शरीर को छोड़ कर नए

और पुष्ट शरीर के ग्रहण करने से, अप्रपन्न और दुःखी किस प्रकार हो सकता है ? इस लिए यह सिद्धान्त कि मृत्यु दुःखप्रद नहीं, अपितु सुखप्रद है, श्रेयस्कर और ग्राह्य है।

"मृत्यु दुःखप्रद क्यों प्रतीत होता है ?"

वीरभद्र—(संघ का एक सदस्य आत्मवेत्ता का उपदेश सुन कर बोला) आप का उपदेश तो अवश्य श्रेयस्कर और ग्राह्य है परन्तु जिस समय सिद्धान्त की सीमा उल्लंघन करके, क्रियात्मक जगत् पर दृष्टि डालते हैं, तो बात इसके सर्वथा विपरीत मालूम होती है। एक कुष्ठ रोग से पीड़ित प्राणी जेलखाने में कैद है। रोग की पीड़ा, भयानक रूप धारण किए हुए है। रोगी के शरीर से रक्त और रस निकल निकल कर प्रवाहित हो रहा है। बन्दी होने के कष्ट भी साथ ही साथ भोगने पड़ते हैं, किसी प्रकार का उसको सुख नहीं है, किन्तु जीवन क्लेश और दुःखमय बनरहा है। स्पष्ट है कि यदि वह मरजावे, तो इन सारे दुःखों से छूट जावे। इसी लिए यदि उसे पूछते हैं कि इन समस्त दुःखों से बचने के लिए क्या तुम मरना चाहते हो ? तो मरने का नाम सुन कर वह भी कानों पर हाथ रखता है। यह अवस्था तो एक साधारण व्यक्ति की हुई कि

मृत्यु का नाम सुन कर कांपने लगता है। अब एक विद्वान् वैज्ञानिक का हाल सुनिए।

"लाप्लास की एक जीवन घटना"

फ्रांस देश का एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक 'लाप्लास' था जिसने जगदुत्पत्ति के संबन्ध में प्रचलित पाश्चात्य सिद्धान्त 'नैबुलर थियोरी' (Nebular theory) का विवरण देते हुए, एक पुस्तक लिखा था, जिस में सूर्य चन्द्रादि अनेक नक्षत्रों की उत्पत्ति का विवरण अङ्कित था। पुस्तक के तैयार होजाने पर, उस की एक कापी, उसने महान् नैपोलियन को भेंट की। नैपोलियन ने पुस्तक को पढ़ा और लाप्लास से फिर भेंट होने पर एक प्रश्न किया। प्रश्न यह था कि तुमने पुस्तक में जगत् के रचयिता ईश्वर का क्यों ज़िक्र नहीं किया ? लाप्लास नास्तिक था। उसने नास्तिकता-पूर्ण उत्तर दिया। उत्तर यह था कि मुझे इस जगदुत्पत्ति का विचार करते हुए, ईश्वर के कल्पना करने की, कहीं आवश्यकता ही नहीं प्रतीत हुई। नैपोलियन इस का उत्तर सुन कर चुप हो गया। परन्तु जब लाप्लास के मृत्यु का समय उपस्थित हुआ और उस को निश्चय हो गया कि अब कुछ क्षण ही में मृत्यु आकर उस की रूह कब्ज़ करना चाहता है, तो वह इतना भयभीत हो गया कि भय की अधिकता के कारण उसे

कुछ भी सुध बुध नहीं रही और अनायास, उसके मुख से ये शब्द निकल पड़े:—Love is greater than thousands of my mathematics" अर्थात् ईश्वर का प्रेम मेरी हजारों गणितों से श्रेष्ठ है। यह ईश्वर का प्रेम, उस समय, उसे याद आया, जब उसने समझ लिया कि अब मृत्यु गला घाटना चाहती है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि साधारण स्थिति के आदमी एक ओर मृत्यु से भयभीत होते हैं, तो दूसरी ओर लाप्लास जैसे विद्वानों का भी मृत्यु कम डरावना नहीं है। क्रियात्मक रूप में जब मृत्यु इतना भयप्रद है, तो फिर किस प्रकार उसे सुखप्रद कहा जासकता है?

आत्मवेत्ता—यह सच है कि क्रियात्मक संसार में मृत्यु-दुःखप्रद सा प्रतीत होता है, पर विचारने के योग्य तो यही बात है कि मृत्यु के समय में होने वाले दुख का कारण स्वयमेव मृत्यु है या और कोई कारण है। जिसे मरने वाले ने स्वयमेव उपस्थित कर लिया है।

वीरभद्र—और क्या कारण हो सकता है?

आत्मवेत्ता—कारण का सङ्केत कुछ तो ऊपर हो हो गया है, कुछ उसे और स्पष्ट अब किया जाता है।

"ममता से दुख होता है मृत्यु से नहीं"

यह कहा जा चुका है कि जगत् की प्रत्येक वस्तु ईश्वर की है और

मनुष्य को प्रयोग के लिए मिली है। मनुष्य को जगत् की समस्त वस्तुओं में केवल प्रयोगाधिकार है। ममता के वशीभूत होकर जब मनुष्य उन्हें अपना समझने लगता है, तभी उसे कष्ट भोगना पड़ता है।

वीरभद्र—अपना समझने से कष्ट क्यों होना चाहिये ?

आत्मवेत्ता—संसार में मृत्यु का क्रियात्मक रूप यह है कि वह मनुष्यों से प्राप्त वस्तुओं को छुड़ा दिया करता है। कल्पना करो कि जयचन्द्र एक गृहस्थ है, उस के पास अनेक ग्राम उसकी ज़िमींदारी में हैं, बहुत-सा धन भी है, पुत्र और पौत्र भी हैं। निदान एक प्रकार से धन धान्य और कुटुम्ब परिवार से परिपूर्ण है। पर्याप्त आयु भोगने के बाद अब जयचन्द्र मृत्युशय्या पर पड़ा है और शीघ्र ही संसार से कूच करने वाला है। अच्छा! बतलाओ कि जयचन्द्र यहां से जब जायगा, तो वह अपने साथ क्या-क्या ले जायगा।

"मनुष्यके साथकेवल धर्म्माधर्म जाते हैं"

सत्यशील—जयचन्द्र, यहाँ से अपने किए हुए कर्म्मों के सिवा, जिन्हीं का नाम धर्म्माधर्म है, और कुछ न लेजायगा।

आत्मवेत्ता—क्या ज़िमींदारी, धन, सम्पत्ति, पुत्र और पौत्रों में से किसी को भी अपने साथ न ले जायगा।

सत्यशील—नहीं।

आत्मवेत्ता—क्यों साथ न लेजायगा? अपनी इच्छा से साथ न ले जायगा या किसी मजबूरी से। यदि किसी मजबूरी से, तो वह मजबूरी क्या है?

सत्यशील—अपनी इच्छा से तो कौन अपनी वस्तुओं को छोड़ा करता है? अवश्य कोई मजबूरी ही होनी चाहिये और वह मजबूरी मृत्यु के सिवा और कुछ प्रतीत भी नहीं होती है।

आत्मवेत्ता—ठीक है। वह मजबूरी मृत्यु के ही रूप में है, मृत्यु का काम ही यह है कि मृत पुरुष से जीवन में प्राप्त वस्तुओं धन सम्पत्ति आदि को छुड़ा दिया करती है। यदि जयचन्द्र इन वस्तुओं में अपना केवल प्रयोगाधिकार ही समझता है, तो वह उस स्कूल मास्टर की तरह है जो स्कूल का अन्तिम घंटा बजते ही स्कूल की इस्तैमाली किताबों और ब्लैकबोर्ड आदि को, जो उसे स्कूल के घंटों में, स्कूल का काम चलाने के लिये मिले थे, स्कूल ही में छोड़ कर प्रसन्नता के साथ स्कूल से चल देता है। समस्त प्राप्त वस्तुओं—सम्पत्ति आदि को स्वयमेव यहीं छोड़कर, यह समझता हुआ कि जीवन-रूपी स्कूल के समाप्त होने पर इनके प्रयोग की अवधि भी समाप्त होगई है। वह प्रसन्नता के साथ संसार से

"सांसारिक वस्तुओं में केवल योग का अधिकार है"

चल देगा। इस दशा में उसे कुछ भी दुःख मृत्यु से न होगा।

श्री हर्ष—जयचन्द्र को इस अवस्था में कुछ तो दुःखी होना ही पड़ेगा। क्योंकि उसे अपनी वस्तुयें तो छोड़नी ही पड़ेंगी।

आत्मवेत्ता—कदापि नहीं। क्या उस स्कूल मास्टर को स्कूल की वस्तुयें, स्कूल में छोड़ कर, छुट्टी होने पर, घर चलते समय भी कुछ दुःख हुआ था?

श्रीहर्ष—स्कूल मास्टर तो प्रसन्नता से छुट्टी होने पर घर जाया करते हैं। उन्हें तो कुछ भी दुःख नहीं होता।

आत्मवेत्ता—तब जयचन्द्र को क्यों दुःख होना चाहिये वह भी तो सारी सम्पत्ति को अपनी नहीं किन्तु ईश्वर की समझ कर, प्रयोग–अवधि (आयु) समाप्त होने पर जा रहा है। हाँ जयचन्द्र को, उस हालत में दुःख हो सकता है, यदि वह इन समस्त वस्तुओं में ममता जोड़ कर यह समझने लगे कि ये वस्तुयें मेरी हैं।

हर्षवर्धन—ममता जोड़ने से क्यों दुख होगा?

आत्मवेत्ता—इसलिये कि वह तो इन वस्तुओं को अपना समझ कर छोड़ना न चाहेगा, क्योंकि कौन अपनी वस्तुओं को छोड़ा करता है, परन्तु मृत्यु उस से इन वस्तुओं को बलपूर्वक छुड़ावेगा। बस बलपूर्वक, इच्छा के विरुद्ध वस्तुओं के छुड़ाने ही से तो कष्ट हुआ करता है। इस से साफ़ ज़ाहिर है कि मृत्यु स्वयमेव दुःखप्रद नहीं; किन्तु मनुष्य जगत् की वस्तुओं में ममता जोड़ कर मृत्यु के समय, मृत्यु को दुःखप्रद बना लिया करता है।

एक उदाहरण

Ludicrous (Laughing) glass अर्थात् एक प्रकार के हँसाने वाले आइने में मनुष्य की अच्छी से अच्छी सूरत इतनी भौंडी और ख़राब दिखलाई देती है कि देखने वाला स्वयमेव अपनी सूरत देख कर हँसने लगता है। क्या इसमें सूरत का दोष है? सूरत का तो कुछ दोष नहीं, सूरत तो अच्छी खासी है—फिर खराब क्यों दिखाई देती है? इस का कारण आइने की ख़राबी है—क्यों कि मामूली शीशे में वही सूरत अच्छी और जैसी है वैसी ही दिखाई देने लगती है—इसी प्रकार मृत्यु तो अच्छी है, स्वागत करने योग्य है, परन्तु जब उस के

अच्छे स्वरूप को, ममता का शीशा लगा कर देखते हैं, तो शीशे के दोष से उस (मृत्यु) का सुन्दर और सुहावना रूप भी भयानक और डरावना दिखाई देने लगता है ।

एक दूसरा उदाहरण

कल्पना करो कि इस सङ्घ में उपस्थित सज्जनों में, रामदत्त एक व्यक्ति ने कुछ अनियमता की और सङ्घ के प्रबन्ध कर्त्ताओं ने रामदत्त को चले जाने की आज्ञा दी । रामदत्त सङ्घ को छोड़ कर जाता है—बतलाओ उसको कुछ कष्ट होगा या नहीं ?

शीलभद्र—अवश्य कष्ट होगा ?,

आत्मवेत्ता—परन्तु यदि रामदत्त किसी कार्यवश स्वयमेव इस सङ्घ से उठ कर चला जावे तो क्या तब भी उसे दुःख होगा ?

शीलभद्र—तब उसे कुछ भी दुःख न होगा क्योंकि वह तो अपनी प्रसन्नता से स्वयमेव उठ कर गया है ।

आत्मवेत्ता—तो विचार यह करना है कि दोनों सूरतों में रामदत्त को सङ्घ छोड़ना पड़ता है, परन्तु जब वह स्वयमेव छोड़ता है, तब वह दुःखी नहीं होता और

जब दूसरा कोई उसे मजबूर करके सङ्ग छुड़ाता है, तब उसे दुःखी होना पड़ता है। इन दोनों अवस्थाओं में जो दो प्रकार की, एक दूसरे से विभिन्न हालतें होती हैं। इस का कारण यह है कि जब मनुष्य अपनी इच्छा से कोई काम करता है, तब उसे कोई दुःख नहीं होता, परन्तु वही काम जब किसी दबाव से करता है, तब उसे दुःखी होना पड़ता है। इसी उदाहरण के अनुसार जब मनुष्य, संसार की सांसारिक वस्तुओं में ममता का नाता न जोड़ कर, स्वयमेव छोड़ता है, तब उसे मृत्यु के समय दुःखी नहीं होना पड़ता। परन्तु जब ममता के वश होकर प्राणी संसार को स्वयं नहीं छोड़ता और मृत्यु बलपूर्वक उस की इच्छा के विरुद्ध उस से संसार छुड़ा देती है तब उसे क्लेशित होना ड़ता है। अतः स्पष्ट है कि मनुष्य को मृत्यु के समय उस के दुःख का कारण ससार के न छोड़ने की इच्छा है, न कि स्वयमेव मृत्यु। इस संसार को न छोड़ने की इच्छा मनुष्य को क्यों उत्पन्न होती है? इस का कारण वही ममता है जिस के फेर में पड़ कर मनुष्य यह समझने लगता है कि संसार में मेरी ज़िमीदारी है मेरा धन है, मेरी सम्पति है, मेरे पुत्र हैं, पौत्र हैं,

मकान है अर्थात् जो है सब मेरा ही तो है। इसलिये संसार नहीं छोड़ना चाहिये।

आत्मवेत्ता ऋषि ने इस प्रकार अपना उपदेश समाप्त किया। सङ्घ के सदस्य, उपदेशामृत पान करके अपने को कृतकृत्य समझते थे। परन्तु विषय के गहन होने से शङ्काओं का उठना समाप्त नहीं हुआ था, इस लिये उनमें से एक पुरुष इस प्रकार बोल उठा—

शीलभद्र—यह बात तो स्पष्ट हो गई कि मृत्यु स्वयमेव दुःखप्रद नहीं। इस ज्ञानवृद्धि के लिये हम सभी उपस्थित नरनारी कृतज्ञता प्रकाशित करते हैं। इस उपदेश से यह भी प्रकट होगया कि यदि मरने वाला अपने को ममता के चक्र से मुक्त रख सके, तो विना किसी प्रकार का दुःख उठाये प्रसन्नता से इस जगत् से कूच कर सकता है और यह भी पहले उपदेश मिल ही चुका है कि पिता पुत्रादि के सम्बन्ध शरीर और आत्मा के संयोग ही के नाम हैं। इन के वियोग होने पर फिर सम्बन्ध की कोई सत्ता अवशिष्ट नहीं रहती और इस प्रकार जब सम्बन्ध ही नहीं रहा, तो फिर परलोक-गत सम्बन्धी के लिये रोना पीटना अथवा और कोई इसी प्रकार की क्रिया करना सर्वथा निरर्थक है। परन्तु मरने वाला मरकर कहां जाता है? परलोक किस का

नाम है ? इस बात को जानने के लिये हम सब बड़े उत्कण्ठित हैं। कृपा करके आगामी सङ्ग में इस विषय का उपदेश करें।

आत्मवेत्ता—बहुत अच्छा (इस के बाद आज का सङ्ग समाप्त होगया)।

दूसरा अध्याय

पहला परिच्छेद

चौथा संघ

मरने के वाद क्या होता है

सुन्दर और सुहावने वृक्षों की शीतल छाया में सङ्घ सङ्गठित है। अनेक नरनारी परलोक का हाल जानने के लिये वड़े उत्सुक दिखाई देते हैं। आत्मवेत्ता अपने नियत स्थान व्यासासन पर सुशोभित हैं। सङ्घ के कार्य का आरम्भ होने में अभी ५ मिनट की देर है। इस लिये सङ्घ को सङ्गठित देख कर भी आत्मवेत्ता अपना उपदेश आरम्भ नहीं करते हैं।

श्वेतकेतु—महाराज सङ्घ में आने वाले नर नारी आ तो गये ही हैं, ५ मिनट पहले ही उपदेश आरम्भ कर देवें।

आत्मवेत्ता—नहीं! यह नहीं हो सकता। जो सज्जन समय के पावन्द हैं, ठीक समय पर आवेंगे। समय से पूर्व कार्य शुरु करने का फल यह होगा कि वे उन शिक्षाओं से लाभ न उठा सकेंगे, जो समय से पूर्व दी जा चुकेंगी। फल यह होगा कि उन्हें समय

की पाबन्दी करने का, इनाम के जगह दण्ड भोगना पड़ेगा। जो मनुष्य समय की पाबन्दी करते हैं, उन के लिये ५ मिनट बड़ा मूल्य रखते हैं, "नैपोलियन" ने आस्ट्रिया के विजय कर लेने पर कहा था, कि उसने आस्ट्रिया को इसलिये विजय कर लिया कि आस्ट्रिया वाले ५ मिनट का मूल्य नहीं जानते थे। इस लिये सङ्घ का कार्य न तो समय से पूर्व शुरु होगा न समय के बाद। किन्तु ठीक समय पर ही सदैव शुरु होता रहा है और आइन्दा भी ऐसा ही होगा। ऋषि की अनुमति से संघ में उपस्थित एक प्रेमी ने मग्न होकर एक भजन गायन किया:—

अशरण शरण, शरण हम तेरी ।
भूले हैं मार्ग, विपिन सघन है, छाई गहन अन्धेरी ॥१॥
स्वार्थ समीर चली ऐसी, सब सुमन सुमन बिखराये ।
हा सद्भाव-सुगन्धि चुराई, प्रेम प्रदीप बुझाये ॥२॥
कलह कण्टकों से छिदवाया, सुख रस सभी सुखाया ।
भ्रातृभाव के नाते तोड़े, अपना किया पराया ॥३॥
लख दुर्दशा हमारी, नभ ने ओस बूंद छलकाई ।
वह भी हम पर गिर कर फूटी, इधर उधर कतराई ॥४॥

करुणासिन्धु सहारा तेरा, तू ही है रखवाला।
दीन अनाथ हुए हम हा! हा! तू दुःख हरने वाला ॥५॥
ऐसी कृपा प्रकाश दिखावे, अपनी दशा सुधारें।
आत्मत्याग का मार्ग पकड़लें, विश्वप्रेम उर धारें ॥६॥

भजन समाप्त हुआ ही था और समय पूरा होने में जब केवल एक मिनट बाक़ी था—तब क्या देखते हैं कि १०-१२ अच्छे शिक्षित विद्वान जिनमें कई विदेशी विद्वान् भी थे संघ में सम्मिलित हुये और आत्मवेत्ता ऋषि का यथोचित सम्मान करने के बाद उचित स्थानों पर बैठ गये। संघ के कार्य्यारम्भ होने का समय भी हो चुका था, इसलिये ऋषि ने अपना उपदेश प्रारम्भ किया:—

आत्मवेत्ता—यह बात कही जा चुकी है कि मनुष्य और प्रत्येक प्राणी, शरीर और आत्मा के संयोग से उत्पन्न होता है। वेद में कहा गया है कि शरीर में आने जाने वाला जीव अमर है, परन्तु यह शरीर केवल भस्म होने तक रहता है, उसके बाद नष्ट हो जाता है।* इसका भाव यह है कि आत्मा तो सदैव एक ही बना रहता है, परन्तु शरीर बराबर प्रत्येक जन्म में बदलता रहता है, इसीलिये आत्मा को अमर और शरीर को मरणधर्मा कहा गया है।

---

* वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्त ँ शरीरम्॥ यजु० अ० ४०

श्रीहर्ष—क्या आत्मा कभी पैदा ही नहीं होता? जगत् के प्रारम्भ में तो ईश्वर उसकी रचना करता ही होगा?

आत्मवेत्ता—नहीं, आत्मा की रचना कभी नहीं होती, इसीलिये सत्शास्त्रों में उसके लिये कहा गया है कि आत्मा न तो उत्पन्न होता है और न मरता है, न उसका कोई उपादान कारण (Material Cause) है और न वह किसी का उपादान है, अर्थात न वह किसी से उत्पन्न होता है, और न उससे कोई उत्पन्न होता है, वह (आत्मा) अजन्मा, नित्य, प्राचीन और सनातन है, शरीर के नाश होने से उसका नाश नहीं होता है। (यह उत्तर देने के बाद आत्मवेत्ता ने पुनः अपना उपदेश शुरू किया)।

आत्मवेत्ता—आत्मा के इस प्रकार शरीरों के बदलते रहने की प्रथा का नाम पुनर्जन्म या आवागमन है, जब प्राणी एक शरीर (तात्पर्य मनुष्य शरीर से है) छोड़ता है तो इस प्रकार शरीर छोड़ने या मरने के बाद उसकी तीन गति होती हैं।

§ न जायते म्रियते वा वि॰।श्चन्नायं कुतश्चिन्नबभूव कश्चित्।
अजोनित्यः शाश्वतोऽयम्पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥
(कठोपनिषद् २। १८) इसी उपनिषद् वाक्य को गीता में भी बहुत थोड़े पाठ भेद के साथ उद्धृत किया गया है।
(देखो गीता २। २०)।

दूसरा परिच्छेद

मरने के बाद की पहिली गति

आत्मवेत्ता—मनुष्य की पहिली गति वह है, जिसमें उसके पुण्य और पाप दोनों प्रकार के कर्म संचित होते हैं। 'नचिकेता' ने एकबार "यम" से यही प्रश्न क्या था कि मरने के बाद प्राणी की क्या गति होती है? "यम" ने उसका उत्तर दिया था कि "मरने के बाद एक प्रकार के प्राणी तो जंगम (मनुष्य, पशु, पक्षी आदि चलने फिरने वाले प्राणियों की) योनियों को प्राप्त होते हैं। परन्तु दूसरे प्रकार के प्राणी स्थावर (न चलने वाले वृक्षादि, की) योनियों में जाते हैं" ये दो भिन्न २ अवस्थायें प्राणियों की क्यों होती हैं? यमाचार्य्य ने इसका उत्तर यह दिया था कि उन प्राणियों के ज्ञान और कर्म के अनुसार ही यह विभिन्नता होती है।* जब मनुष्य के पुण्य पाप बराबर या पुण्य कर्म अधिक होते हैं, तब उसे मनुष्य योनि प्राप्त होती है। परन्तु जब अवस्था इसके विरुद्ध होती है, अर्थात् पुण्य कर्म कम या

"आवागमन आवश्यक है"

---

* योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥
(कठोपनिषद् ५। ७)

कुछ नहीं या पाप अधिक या सब पाप ही पाप होते हैं, तो उसे मनुष्य से नीचे दरजे की चल और अचल योनियों में जाना पड़ता है।

वसन्तीदेवी—क्या जीव, मनुष्य योनि तक पहुँच कर फिर अपने से निम्न श्रेणी की योनियों में भी जा सकता है ?

"मनुष्य को नीचे की योनियों में भी जाना पड़ता है"

आत्मवेत्ता—हाँ, जा सकता है। यदि उसके कर्म अधिकता के साथ बुरे हैं, तो अवश्य उसे नीचे जाना पड़ेगा।

वसन्तीदेवी—परन्तु यह तो विकास के नियमों के विरुद्ध है कि मनुष्य उन्नति करके फिर पीछे लौटे।

"विकास के साथ ह्रास अनिवार्य है"

आत्मवेत्ता—दुनियाँ में एक पहिये की गाड़ी कभी नहीं चलती। ह्रास शून्य विकास की कल्पना भी विक्लिष्ट कल्पना ही नहीं, किन्तु प्रत्यक्ष के भी विरुद्ध है। जगत् में कोई वस्तु नहीं देखी जाती, जिसमें विकास के साथ ह्रास लगा न हो। मनुष्य उत्पन्न होता है, परन्तु अन्त में उसे मरना भी पड़ता है। सूर्य बनता है, उसकी उष्णता पूर्णकला प्राप्त कर लेती है, परन्तु पूर्णता के बाद ही ह्रास शुरू हो जाता है। एक समय आता है और

आवेगा जब सूर्य उष्णता-हीन हो जावेगा । चन्द्रमा बढ़ता है, परन्तु पूर्णकला को प्राप्त करके उसे घटना भी पड़ता है । एक समय चंद्रमा में जलादि का होना बतलाया जाता था, परन्तु अब कहते हैं कि जल का ह्रास होकर चन्द्रमा जल शून्य हो गया है इत्यादि । इस प्रकार जब सृष्टि का सार्वत्रिक नियम यह है कि विकास के साथ ह्रास भी होता है, तब मनुष्य इस नियम से किस प्रकार पृथक हो सकता है ? इसके सिवा कर्म सिद्धान्त की दुनियाँ में जब हम प्रविष्ट होते हैं, तो पुण्य कर्म के साथ पाप कर्म मौजूद ही है और पुण्य कर्म करके उसके फल से किस प्रकार बच सकता है ? मनुष्य, कर्म करने में स्वतन्त्र है, यह स्वतन्त्रता उसका जन्म सिद्ध अधिकार है, परन्तु चोरी और इसी प्रकार के दुष्ट कर्म करके उसे जेलखाने जाना पड़ता है, जहाँ उसकी स्वतंत्रता छिन जाती है । क्या तुम नहीं देखते कि स्वतंत्रता प्राप्त प्राणी दुष्ट कर्मों से बंधन में आकर स्वतंत्रता खो बैठता है ?

वसन्ती देवी—यह तो देखा ही जाता है ।

आत्मवेत्ता—तो फिर यदि ह्रास शून्य विकास ही का नियम दुनियां में काम करता होता, तो स्वतन्त्रता प्राप्त मनुष्य परतन्त्र कैसे हो जाता ? भूल यह है कि तुम

कर्म सिद्धान्त को भूल कर केवल विकास रूप मृग तृष्णा से प्यास बुझाने की इच्छा में हो, प्राणी कर्म फल ही से मनुष्य बनता है और कर्म फल ही से प्राप्त मनुष्यता को खो भी देता है।

वसन्ती देवी—बन्दी होना रूप परतन्त्रता तो अस्थायिनी होती है, परन्तु निम्न योनियों में जाना तो उससे भिन्न बात है।

आत्मवेत्ता—बन्दी होकर बन्दी-गृह में जाना और निम्न योनियों को प्राप्त होना, इन में न म मात्र की विभिन्नता है। मनुष्य योनि ही एक योनि है, जिस में भोग के साथ प्राणी स्वतन्त्रता से कर्म कर सकता है। बाक़ी जितनी योनियाँ हैं, वे सभी भोक्तव्य योनियां, जेलख़ाने की सदृश हैं। मनुष्य जितनी अवधि के लिये इन योनियों में जाता है, उसे समाप्त कर के फिर जेलखाने से वापिस होने की सदृश मनुष्य योनि में लौट आता है।

देवप्रिय—प्राणी इन योनियों में आख़िर जाता क्यों है?

आत्मवेत्ता—प्राणी स्वयमेव अपनी इच्छानुसार इन नीचे की योनियों में नहीं जाता, किन्तु

"आवा गमन मनुष्य सुधार के लिये है"

बन्दी होकर जेलखाने में भेजे जाने की सदृश ही, इन निम्न योनियों रूपी जेलखानों में भी, सर्वोच्च न्यायाधीश की आज्ञानुसार, दण्ड भोगने के लिये, किन्तु सुधार के उद्देश्य से भेजा जाता है।

देवप्रिय—वहाँ सुधार किस प्रकार होता है ?

आत्मवेत्ता—मनुष्य का पाप यही है कि वह अपनी इन्द्रियों को पाप कर्म करने का अभ्यासी बनाकर स्वयमेव उनके बन्धन में फँस जाता है। तब दयालु न्यायाधीप अपनी दयापूर्ण न्याय-व्यवस्था से उसे ऐसी किसी योनि में भेज देता है, जहां उसकी वही इन्द्रिय छिन जाती है। कल्पना करो कि एक मनुष्य ने आंखों को पापमय बना लिया है, तो वह किन्हीं ऐसी योनियों में भेज दिया जायगा, जो चक्षु हीन हैं। करने से करने का और न करने से न करने का अभ्यास हुआ करता है। इसलिये आंखों के गोलकों के न होने से आंखों का काम बन्द हो गया और काम बन्द हो जाने से आंखों का बुरा और पाप करने का अभ्यास छूट जावेगा। ज्योंही यह अभ्यास छूट जाता है, त्योंही वह फिर मनुष्य योनि में लौटा दिया जाता है, जहां अब आंखों के बन्धन से स्वतन्त्र है। इसी प्रकार आवागमन के

द्वारा प्राणियों का सुधार हुआ करता है। जब कोई अधम प्राणी सम्पूर्ण इन्द्रियों से पाप करके उन्हें पापमय बना लेता है, तब वह स्थावर योनियों में भेज दिया जाता है। जो इन्द्रिय रहित योनियां हैं, उन में जाने से समस्त इन्द्रियों का, उपर्युक्त भांति, सुधार करता है।

दया तथा न्याय

तर्कप्रिय—आपने ईश्वर को दयालु, न्यायाधीश कह कर संकेत किया है। भला न्याय और दया ये परस्पर विरोधी गुण किस प्रकार एक व्यक्ति में एकत्रित रह सकते हैं ?

आत्मवेत्ता—न्याय और दया परस्पर विरोधी गुण नहीं हैं। इनके समझने में साधारण पुरुष ही नहीं किंतु कभी २ उच्चकोटि के विद्वान् भी गलती किया करते हैं। हर्बर्ट स्पेन्सर ने भी इसी प्रकार की भूल की है। उसने ईश्वर को अज्ञेय (Unknowable) प्रमाणित करने के लिये एक हेतु यह भी दिया है कि न्याय और दया दो विरोधी गुण किस प्रकार एक ही व्यक्ति में इकट्ठे हो सकते हैं।* इस प्रकार के पक्ष का समर्थन करने वाले एक भूल किया करते हैं और वह भूल यह है कि वे

* देखो First Principle by H. Spancer.

दया का भाव अपराधों का माफ़ करना समझ लिया करते हैं। अपराधों का माफ़ करना दया नहीं, किन्तु अन्याय है और दया और अन्याय एक भाव के बतलाने वाले शब्द नहीं हैं, किन्तु एक दूसरे से सर्वथा विरुद्ध हैं।

तर्कप्रिय—तो फिर दया और न्याय में अन्तर क्या है ?

आत्मवेत्ता—दया और न्याय में अन्तर यह है कि न्याय कर्म की अपेक्षा रखता है। यदि कोई पुरुष कर्म न करे, तो कोई न्यायाधीश न्याय नहीं कर सकता। न्याय कर्म के फ ।फल देने का नाम है। परन्तु दया दयालु अपनी ओर से किया करता है। दया के लिये कर्म की अपेक्षा नहीं है। दोनों में जो अन्तर है, वह स्पष्ट हो गया कि, न्याय के लिये कर्म की अपेक्षा है, परन्तु दया के लिये कर्म अपेक्षित नहीं।

तर्कप्रिय—यदि ईश्वर के लिये यह कल्पना की जावे कि वह अपराधों को उचित समझने पर माफ़ भी कर सकता है, तो इसमें हानि क्या है ? इससे मनुष्यों में ईश्वर के प्रति प्रेम और श्रद्धा के भाव ही उत्पन्न होंगे।

आत्मवेत्ता—अपराधों का दण्ड विधान न होने और क्षमा कर देने का फल यह होता है कि मनुष्यों की प्रवृत्ति अपराध करने की ओर बढ़ा करती है। अपराध करने से

जो बुरा प्रभाव मनुष्य के अन्तःकरणों पर पड़ा करता है, जिन्हें कर्म की रेखा कहते हैं, यह प्रभाव रूप रेखा, फल भोग के बिना नष्ट नहीं होती। इसलिये मनुष्य का भविष्य सुधारने के लिये भी अपराधों का दण्ड विधान अनिवार्य है, परन्तु वह दण्ड सब के लिये एक सा नहीं हो सकता। एक लज्जाशील विद्यार्थी के लिये एक अपराध के बदले में इतना ही दण्ड पर्याप्त हो सकता है कि उसे केवल आँखों से ताड़ना कर दी जावे, परन्तु दूसरे निर्लज्ज विद्यार्थी को उसी अपराध के बदले में, बेतों से दण्ड देना भी, कठिनता से काफ़ी समझा जाता है। इसलिये दण्ड की मात्रा उतनी ही पर्याप्त हो सकती है, जितने से अपराधी का सुधार हो सके और वह प्रत्येक व्यक्ति के लिये उस की अवस्थानुसार पृथक् पृथक् ही हो सकती और हुआ करती है।

आत्मवेत्ता—(इन उत्तरों के देने के बाद ऋषि ने फिर अपना व्याख्यान शुरू किया) जिस समय मनुष्य मृत्यु-शय्या पर होता है और अन्तिम श्वास लेने की तैयारी करता है, तब उस की अवस्था यह होती है:—

प्राण छोड़ने के समय प्राणी की क्या हालत होती है ?

जिस प्रकार कोई राजा जब कहीं जाता है, तब उसे

विदा करने के लिये उस के पास, ग्राम नायक आदि आते हैं, उसी प्रकार जीवात्मा जब ऊर्ध्वश्वास लेना शुरू करता है, तब उस के चारों ओर सब इन्द्रियाँ और प्राण उपस्थित होते हैं। जीव उस समय अपने तैजस-अंशों को, जो समस्त शरीर में फैला रहता है, समेटता हुआ हृदय की ओर जाता है, जब वह आँख के तेज को खींच लेता है तब वह बाहर की किन्हीं वस्तुओं को नहीं देखता और उस समय निकट बैठ, बान्धव कहने लगते हैं कि अब यह नहीं देखता, इसी प्रकार जब वह प्राण, वाक, श्रोत्र, स्पर्श, मनादि समस्त बाह्य और अन्तःकरणों से अपने तेज को खींच लेता है, तब वे ही बन्धु-बान्धव कहने लगते हैं, कि अब यह नहीं सूंघता, नहीं बोलता नहीं सुनता, नहीं छूता, नहीं जानता, इत्यादि। उस समय उसके हृदय का अग्र भाग प्रकाशित होने लगता है और वह भी प्रकाश के साथ शरीर से निकलता है।* नेत्र या शरीर के किसी दूसरे भाग से निकलता है। निकलने के मार्गों का भेद उसकी अन्तिम गतियों के अनुकूल होता है।† जब जीव शरीर से निकलता है, तो उसके साथ ही प्राण और सम्पूर्ण सूक्ष्म इन्द्रियाँ (सूक्ष्म

---

* देखो बृहदारण्यकोपनिषद अध्याय ४ ब्राह्मण ४ःकण्डिका १—२

† कठोपनिषद् में लिखा है कि जब जीव मुक्ति का अधिकारी हो

शरीर) भी, स्थूल शरीर को छोड़ते हैं। इस प्रकार शरीर से निकलने वाले जीव के साथ उसके ज्ञानकर्म और पूर्वप्रज्ञा (पूर्वजन्मानुभूत बुद्धि) भी होते हैं।* इस प्रकार पुण्य और पाप कर्म दोनों के वशीभूत जीव, एक शरीर को छोड़कर दूसरे नये शरीर को, ग्रहण कर लेता है।

एक योनि से दूसरी योनि तक पहुँचने में कितना समय लगता है

शीलभद्र—एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर के ग्रहण करने में जीव को कितने दिन लगते हैं और इन दिनों में वह जीव कहाँ रहता है?

आत्मवेत्ता—"याज्ञवल्क्य" ने "जनक" को इसी प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा था कि जैसे "तृणजलायुका" (एक कीट विशेष) एक तिनके के अन्तिम भाग पर पहुँच कर दूसरे तिनके पर अपने अगले पांव जमा कर तब पहिले तिनके को छोड़ता है। इसी प्रकार जीवात्मा

जाता है, तब शरीर से मूर्धा में निकलने वाली नड़ी (सुषुम्ना) के द्वारा निकलता है। परन्तु जब मुक्ति से भिन्न गति होती है। तब अन्य मार्गों से निकला करता है।

(कठो० ६।१६)

* देखो बृहदारण्यकोपनिषद् ४—३—२।

एक शरीर को उसी समय छोड़ता है, जब दूसरे नये शरीर का आश्रय ग्रहण करलेता है। ‡

शीलभद्र—आख़िर इसमें कुछ समय तो लगता ही होगा, बिना समय के तो कार्य नहीं हो सकता।

आत्मवेत्ता—अवश्य कुछ न कुछ समय एक शरीर को छोड़ कर दूसरे शरीर के ग्रहण करने में लगता है, परन्तु वह समय इतना थोड़ा होता है कि मनुष्य ने जो समय की नाप तोल (दिन, घड़ी, मुहूर्तादि) नियत की है, उस गणना में नहीं आता।

इन्द्रदेव—यह जीवन दूसरे शरीर में जाता क्यों है? जब शरीर से निकलना उसके अधिकार में है, तो दूसरे में जाना भी उसी के अधिकार में होना चाहिए।

"जीव दूसरे शरीर में क्यों जाता है?"

आत्मवेत्ता—एक शरीर का छोड़ना और दूसरे का ग्रहण करना इन दोनों में से एक भी जीव के अधिकार में नहीं है। शरीरस्थ जीव के लिए एक जगह "जनक" के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए "याज्ञवल्क्य" ने बतलाया था कि "वह विज्ञानमय, अन्नमय, प्राणमय, चक्षुर्मय, श्रोत्रमय, पृथ्वीमय, आपोमय, वायुमय, आकाशमय, तेजोमय, अतेजोमय, कार्यमय, अकार्यमय, क्रोधमय

‡ देखो वृहदारण्यकोपनिषद् ४—८—३।

अक्रोधमय, धर्ममय, अधर्ममय, एवं सर्वमय है ।" यह जीव इदम्मय और अदोमय है। इसीलिए उसको सर्व-मय कहते हैं। जैसे कर्म और आचरण करता है, जीव वैसा ही हो जाता है। साधु (अच्छे) कर्म वाला साधु और पाप कर्म करने वाला पापी होता है। पुण्यकर्म से पुण्यवान और पापकर्म से पापी होता है। यह जीव काम—(इच्छा) मय है। जैसे उस की कामना होती है, वैसा ही फल पाता है * एक और ऋषि ने कहा है कि "जो मनुष्य मन में उन की वासना रखता हुआ जिन जिन विषयों की इच्छा करता है, वह उन कामनाओं के साथ, जहाँ २ वे उसे खींचकर ले जाती हैं, वहां उत्पन्न होता है।" † इन कथनों से स्पष्ट है कि जीव अपने कर्मा-नुसार एक शरीर छोड़ने और दूसरे के ग्रहण करने में परतन्त्र होता है—अर्थात् कर्मानुसार उसे जहाँ उत्पन्न होना चाहिये, वहां उत्पन्न होता है, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है।

विनयकुमार—आपने अभी कहा था कि जीव सूक्ष्म शरीर और इन्द्रियों के साथ शरीर से निकलता है। क्या उस की मृत्यु नहीं होती ?

* बृहदारण्यकोपनिषद् अध्याय ४ ब्रा० ४ क० ५।

† मुण्डकोपनिषद् ३—२—२ ।

आत्मवेत्ता—सूक्ष्म शरीर की मृत्यु नहीं होती—मृत्यु केवल स्थूल शरीर की हुआ करती है। इन दो के सिवा एक तीसरा कारण शरीर और भी है, उस की भी मृत्यु नहीं होती। सूक्ष्म और कारण ये दोनों शरीर आत्मा से उस समय पृथक् होते हैं, जब वह पूर्ण स्व-तन्त्रता रूप मुक्ति को प्राप्त करलेता है।

"शरीर के भेद और उन का विवरण"

विनयकुमार—ये तीन शरीर क्यों आत्मा को दिये गये हैं। क्या एक शरीर से आत्मा का काम नहीं चल सकता था ?

आत्मवेत्ता—एक शरीर से चाहे वह स्थूल हो वा सूक्ष्म तीनों शरीरों का काम नहीं चल सकता था, तीनों के काम पृथक्-पृथक् इस प्रकार हैं:—

(१) "स्थूल शरीर" —यह १० इन्द्रियों का समुदाय है और शरीर के वे अवयव भी उसमें शामिल हैं, जिनका काम अनिच्छित रीति से प्राकृतिक नियमानुसार होता है जैसे हृदय, फेफड़े आदि। इस शरीर के विकसित और पुष्ट होने से मनुष्य की शारीरिकोन्नति होती है। यह शरीर ५ स्थूल भूतों का कार्य्य होता है।

(२) "सूक्ष्म शरीर"—सूक्ष्म भूतों से निम्न भाँति बनता है:—

सूक्ष्मभूत रूपी कारण	सूक्ष्म शरीर रूपी कार्य
१ महत्तत्व	१ बुद्धि
२ अहंकार	१ अहंकार*
३—७, पञ्च तन्मात्रा	३—३ शब्द-स्पर्श रूप रस गंध (ज्ञानेन्द्रियों के विषय)
८—१७;१० इन्द्रियां	८—१७=५ प्राण+५ ज्ञानेन्द्रियाँ
१८ मन	१८ मन

यह सूक्ष्म शरीर शक्ति समुदाय रूप में रहता है और इसके विकास और पुष्टित होने से मानसिकोन्नति होती है—

(३) कारण शरीर—कारणरूप प्रकृति अर्थात् सत्व, रजस् और तमस् की साम्यवस्था। इस शरीर के पुष्ट होने से मनुष्य योगी और ईश्वरभक्त बना करता है।

इन तीन शरीरों का विभाग एक दूसरे प्रकार से भी किया गया है। इस विभाग का नाम "कोश-विभाग" है। ३ शरीर और ५ कोशों का सम्बन्ध इस प्रकार है—

---

* अहंकार को सूक्ष्म शरीरावयवों की गणना से प्रायः पृथक करके सूक्ष्म शरीर १७ वस्तुओं का ही समुदाय माना जाता है, इसका कारण यह है कि अहंकार का काम शरीर के पृथक निर्मित हो जाने से पूरा-सा हो जाता है।

३ शरीर और ५ कोष

(१) स्थूल शरीर	=	(१) अन्नमय कोष
(२) सूक्ष्म शरीर	=	(२) प्राणमय कोष
		(३) मनोमय कोष
		(४) विज्ञानमय कोष
(३) कारण शरीर	=	(५) आनन्दमय कोष

क्या सूक्ष्म शरीरधारियों का पृथक् लोक है ?

वसन्ती देवी—क्या सूक्ष्मशरीर, स्थूलशरीर का सूक्ष्म रूप सूक्ष्म पुतले की भाँति नहीं होता ? कहा तो यह जाता है कि सूक्ष्म शरीर (Astral body) धारियों का एक पृथक् लोक है, और वे उस लोक में बिना स्थूल शरीर ही के रहते हैं। अपना काम उसी अपने सूक्ष्म शरीर से चला लेते हैं। अपनी इच्छानुसार मनुष्य की सहायता भी करते हैं। मनुष्यों की प्रार्थना का स्वीकार या अस्वीकार करना इन्हीं सूक्ष्म शरीर धारियों के ही अधिकार में है, इत्यादि।

आत्मवेत्ता—ये सब क्लिष्ट कल्पना मात्र है। सूक्ष्म-शरीर के अवयव, सूक्ष्मेन्द्रिय कुछ भी काम नहीं दे सकते यदि उनके कार्य्य का साधन रूप स्थूलेन्द्रिय (इन्द्रियों के गोलक) नहीं। एक पुरुष सूक्ष्म चक्षु और सूक्ष्म

श्रोत्रेन्द्रिय रखता है, परन्तु यदि बाह्यगोलक न हों या काम देने के अयोग्य हों, तो वह न देख सकता है और न सुन सकता है, फिर यह बात किस प्रकार स्वीकृत हो सकती है कि सूक्ष्म शरीर से कोई अपना सब काम चला सकते हैं और यह कि उनका एक पृथक् ही लोक है।

'भूत प्रेत क्या हैं ?'

वसन्तीदेवी—ये भूत प्रेत फिर क्या हैं ? ये किस प्रकार का शरीर रखते हैं, आँखों से तो उनका शरीर दिखाई नहीं देता।

आत्मवेत्ता—मनुष्य जब मर जाता है, तो उसके शव (लाश) का नाम "प्रेत" होता है, जब तक उसको भस्म नहीं करदिया जाता, तब तक उसका नाम "प्रेत" ही रहता है, भस्म हो जाने के बाद "प्रेत-संज्ञा" समाप्त हो गई और अब उस मरे हुए पुरुष को "भूत"(बीता हुआ) कहने लगते हैं, क्योंकि वर्तमान में उसकी कोई सत्ता बाक़ी नहीं रहती, इसके सिवा प्रेतयोनि आदि के विचार भ्रममूलक हैं।

(इसप्रकार प्रश्नों का उत्तर देने के बाद ऋषि ने अपना व्याख्यान समाप्त करने के लिये अन्तिम शब्द कहने आरम्भ किये)।

आत्मवेत्ता—मरने के बाद जो तीन गति होती हैं, उन

में से पहिली गति आवागमन के चक्र में रहना है, अर्थात् मर कर किसी न किसी योनि को, अपने कर्म्मानुसार प्राप्त करना है। प्राणी एक शरीर को छोड़कर तत्काल दूसरी योनि में चला जाता है, जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है। आगामी संघ में शेष गतियों का व्याख्यान किया जायगा, आज का संघ यहीं समाप्त होता है।

तीसरा परिच्छेद

पाँचवाँ संघ

मरने के बाद की दूसरी गति

"दूसरी गति कौन सी है"

उज्ज्वल तपोभूमि, तपोनिधि आत्मवेत्ता के तप के कारण हर्ष और शान्ति के वातावरण से परिपूर्ण है, सुन्दर संघ जमा हुआ है—अनेक नर नारी मृत्यु के बाद दूसरी गति क्या होती है, इसके जानने की इच्छा से एकत्रित हैं और कान लगाए हुए बैठे हैं कि, ऋषि कब अपना मनोहर व्याख्यान प्रारम्भ करते हैं। नर नारियों की इस उत्सुकता का अनुभव करते हुए ऋषि ने अपना व्याख्यान प्रारम्भ किया :—

आत्मवेत्ता—जो प्राणी ऐसे कर्म्म करते हैं, जो पुण्य

और पाप मिश्रित होते हैं, मरने पर वे उस गति को प्राप्त होते हैं, जिसकी बात कही जा चुकी है, और जिस का नाम "पहिली गति" रक्खा गया है—परन्तु जो प्राणी केवल ऐसे कर्म करते हैं जिनमें पाप का समावेश नहीं होता, और जिन्हें पुण्यकर्म ही कहते हैं। वे दो प्रकार के होते हैं:—एक तो वे जो सकाम कर्म करते हैं—और दूसरे वे, जो निष्काम कर्म करते हैं। सकाम कर्म वाले मर कर जिस गति को प्राप्त होते हैं, उसी गति का नाम 'दूसरी गति' है।

दूसरी गति

"उस गति के प्राप्त होने का क्रम"

जो प्राणी इष्ट फल की प्राप्ति के लिए बड़े-बड़े यज्ञ * करते हैं, या अपनी कामनाओं की तृप्ति के लिये जो कुआँ† बावली तालाब, धर्म्मशाला आदि का निर्माण करते हैं, ऐसे पुरुष मरने के बाद निम्न दशाओं को प्राप्त होते ‡ हैं:—

(१) धूम्र (धुआं की सी) दशा को प्राप्त होता है।

---

* इन यज्ञादि "को इष्ट" कहते हैं।

† इनका "पूर्त्त" नाम है।

‡ देखो छान्दोग्योपनिषद् प्रपाठ ५ खंड १० प्रवाक ४।

(२) धूम्र दशा से रात्रिवत् दशा होती है।
(३) रात्रि से अपर (कृष्ण) पक्षीय दशा लाभ करते हैं।
(४) अपर पक्ष से पाण्मासिक दाक्षिणायिणी दशा प्राप्त करते हैं।
(५) पाण्मासिकी दशा से पैतृक दशा प्राप्त होती है।
(६) पैतृक से आकाशीय दशा और उससे अन्तिम।
(७) चान्द्रमसी दशा को पहुँचते हैं।

इस प्रकार चान्द्रमसी दशा को प्राप्त होकर इस अवस्था में वे अपने शुभ परन्तु सकाम कर्मों का भोग करते हैं और कर्मों के क्षीण और भोगों के समाप्त होने पर उन्हें फिर साधारण मनुष्य योनि में आना पड़ता है।

श्वेतकेतु—ये धूम्रादि अवस्थायें क्या हैं और इनके प्राप्त होने का तात्पर्य क्या है ?

आत्मवेत्ता—इन अवस्थाओं के द्वारा यह बात दर्शाई गई है कि किस प्रकार जीव क्रमशः अधिक २ प्रकाश को प्राप्त करता है। धूयें में नाम मात्र का प्रकाश होता है। रात्रि में उससे अधिक, अपर पक्ष अर्थात् कृष्णपक्ष की १५ रात्रियों में उससे अधिक, ६ मास में उससे अधिक, पैतृक दशा में उससे भी अधिक और आकाशीय में उससे अधिक, और इन सब से अधिक चान्द्रमसी

दशा में प्रकाश की प्राप्ति और अन्धकार की निवृत्ति होती है।

"पैतृक दशा क्या है ?"

दक्ष—पैतृक दशा का भाव क्या है ?

आत्मवेत्ता—पैतृक दशा वायवीय दशा को कहते हैं और पिता—पालक और रक्षक का नाम है, वायु के भी यही काम हैं, इसलिए पितर नाम वायु का भी है, पंच-भूतों में आकाश के बाद वायु का स्थान भी है, इसके सिवा लौटने के क्रम में भी आकाश के बाद वायु ही का स्थान है, इससे भी स्पष्ट है कि पितर नाम वायु ही का है।

दक्ष—और चान्द्रमसी दशा का तात्पर्य चन्द्रलोक से है, या क्या ?

आत्मवेत्ता—चान्द्रमसी दशा को प्राप्त होने का भाव यह है कि ऐसे लोक (योनि) को प्राप्त होना, जिसमें केवल हर्ष ही हर्ष हो—दुःख का लेश भी न हो।

"दूसरी गति को प्राप्त जीव कहां रहते हैं ?"

देवप्रिय—चान्द्रमसी दशा को प्राप्त होकर जीव किसी लोक (स्थान) विशेष में रहते हैं, या कहाँ ?

आत्मवेत्ता—ब्रह्माण्ड में असंख्य सूर्यलोक हैं, असंख्य चन्द्रलोक और असंख्य ही पृथ्वीलोक हैं। "मरते समय

मन जहां और जिस कामना में आसक्त होता है, उस कामना की पूर्ति जिस लोक और जिस योनि में हो सकती है, जीव वहीं जाता है।"* इस गति को प्राप्त भिन्न २ प्राणी भिन्न भिन्न लोकों को प्राप्त होते हैं, सब के लिये कोई एक स्थान विशेष नियत नहीं है । इस प्रकार के प्राणियों में से जो कोई जहाँ भी जाता है, उसे वहाँ सुख ही सुख प्राप्त होता है, दुःख प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिये उस लोक या योनि का नाम जहां भी ऐसा जीव जाता है चन्द्रलोक या चान्द्रमसी दशा ही होती है। और इस प्रकार भिन्न भिन्न लोकों (योनियों) को प्राप्त होने का क्रम सब के लिये एक ही सा होता है, और वह क्रम वही है जिस का ऊपर उल्लेख हो चुका है।

तत्त्ववित्—जब सकाम कर्म कर्त्ता पाप नहीं करते, तो इनकी मुक्ति क्यों नहीं हो जाती और इन्हें चान्द्रमसी दशा से लौटना क्यों पड़ता है ?

आत्मवेत्ता—इस का कारण वासना है, जो सकाम कर्म से उत्पन्न होती है।

तत्त्ववित्—वासना क्या है ?

आत्मवेत्ता—वासना के समझने के लिये कर्म के भेदों

---

*बृहदारण्यकोपनिषद् अ० ५ ब्रा० ४ कं० ६।

का जानना आवश्यक है, इसलिये पहिले इन्हीं को कहते हैं:—

कर्म दो प्रकार के होते हैं, जैसा कहा भी जा चुका है:—

"कर्म के भेद" (१) सकाम (२) निष्काम। सकाम कर्म वे होते हैं, जिन में कर्म करने से पूर्व फल की इच्छा करली जाती है, परन्तु फल की इच्छा उत्पन्न न करके जो कर्म किये जाते हैं, अर्थात् जो कर्म केवल धर्म—(कर्त्तव्य-Duty) समझ कर किये जाते हैं, उनको निष्काम कर्म कहते हैं। वैदिक कर्म पद्धति में निष्काम कर्म का उच्चासन है, वेद और उपनिषदों ने निष्काम कर्म को मृत्यु के बन्धन काट देने का साधन माना है।* गीता ने निष्काम कर्म ही को "कर्मयोग" के नाम से पुकारा है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुये स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि:—

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥" (गीता २।४७)

अर्थात् 'तेरा अधिकार केवल कर्म करने में है, फलों पर कभी नहीं—तू कर्मों के फलों का हेतु (इच्छा करके) मत हो, (परन्तु) अकर्म में भी तेरा फंसना न होवे।

जहां निष्कर्म का इतना उच्चासन है, वहां सकाम

कर्म बन्धन का हेतु ठहराया गया है—उपनिषद् का एक वाक्य है:—

> भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वे संशयाः।
> क्षीयन्ते चास्यकर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥
> (मुण्डकोपनिषद् २। २८)

अर्थात् "जब हृदय की गांठ खुल जाती है, (अर्थात् सकाम कर्मजन्य वासना नष्ट हो जाती है), संपूर्ण संशय दूर हो जाते हैं, और सब (सकाम) कर्म क्षीण हो जाते हैं, तब मनुष्य मोक्ष का अधिकारी होता है।" इस प्रकार निष्काम कर्म की वैदिक साहित्य में श्रेष्ठता दिखलाई गई है और सकाम कर्म बन्धन का हेतु ठहराया गया है। मनुष्य को जहां सदैव कार्मिक जीवन रखने का विधान है। वहां उसे यह भी बतलाया गया है, कि सब काम (फल की इच्छा न करते हुए) धर्म समझ कर करने चाहिएँ, क्योंकि फल की इच्छा करने ही से कर्म बन्धन का हेतु हो जाता है।

जयदत्त—परन्तु निष्काम कर्म भी तो विना इच्छा के नहीं किये जा सकते, फिर मनुष्य किस प्रकार इच्छा रहित हो सकता है?

आत्मवेत्ता—जब यह कहा जाता है कि फल की इच्छा छोड़ कर कर्म करे तो इसका तात्पर्य यह नहीं

होता कि मनुष्य कर्माऽकर्म, धर्माऽधर्म का विवेक न करे, अच्छी तरह से विचार करके जो कर्म कर्त्तव्य ठहरें उन्हीं को करना चाहिये। फल की इच्छा न करने का भाव यह है कि, ऐसे कर्म न करें जो वासनोत्पादक हों—सकाम और निष्काम का असली फ़र्क यही है कि सकाम कर्म वासनोत्पादक होते हैं, जब कि निष्काम कर्म बंधन में लाने वाली वासना नहीं पैदा करते।

"वासना"

प्रेमतीर्थ—वासना किसे कहते हैं? इस प्रश्न का उत्तर कृपा करके अब देवें।

आत्मवेत्ता—वासना एक प्रकार का अभ्यासांश है, जो कृत-कर्मों की स्मृति के रूप में, चित्त में रहता है। इसका काम यह होता है कि जिस कर्म की वासना होती है उससे, उसी प्रकार के कर्म के फिर करने की प्रेरणा होती रहती है। यदि एक मनुष्य ने चोरी की, तो उसकी वासना उसको चोरी करने को फिर प्रेरणा करेगी। इसी प्रकार जिस कर्म की वासना होती है, उसी कर्म को पुनः करने की प्रेरणा करती रहती है। मुण्डकोपनिषद् के उपर्युक्त वाक्य में इसी वासना को "हृदय ग्रन्थि" कहा है। जब तक यह "हृदय ग्रन्थि" (वासना) मनुष्य के अन्तःकरण में रहती है, उस समय तक मनुष्य जन्म मरण के बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता।

सुभद्रा देवी—आगामी जन्म किस प्रकार का होगा, क्या इस पर भी वासना का कुछ प्रभाव पड़ा करता है ?

"वासना के अनुकूल गति"

आत्मवेत्ता—वासना के अनुकूल ही आगामी जन्म हुआ करता है। उपनिषद् में कहा है:—

यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः।
सहात्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति ॥
(प्रश्नोपनिषद् ३ । १०)

अर्थात् "मरते समय प्राणी जैसी भावना से युक्त चित्त वाला होता है, उसी चित्त के साथ प्राण का आश्रय लेता है, और प्राण उदानवृत्ति के साथ युक्त हुआ सूक्ष्म शरीर सहित आत्मा के साथ संकल्पित (वासनानुकूल) योनि को प्राप्त कराता है।" इसी आशय को एक दूसरी उपनिषद् में भी प्रकट किया गया है—

यं यं लोकं मनसा संविभाति
विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान्।
तं तं लोकं जायते तांश्च
कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः ॥
(मुण्डकोपनिषद् ३ । १ । १०)

अर्थात् "निर्मल बुद्धि वाला पुरुष जिस २ लोक (योनि) की मन से चिन्ता करता है और जिन भोगों को (वासना के वशीभूत होकर) चाहता है, उस २ लोक

और उन २ भोगों को प्राप्त होता है। इसलिए सिद्धि का इच्छुक आत्मवित्त पुरुष की पूजा करे।"

इन उपनिषद् के वाक्यों से स्पष्ट है कि आगामी जन्म, चित्त में जिस प्रकार की भी वासना होती है, उन्हीं के अनुकूल होता है। लोकोक्ति भी इस में प्रमाण है। "अन्तमता सो गता" अर्थात् अन्त में जैसी वासना होती है उसी के अनुकूल गति होती है।

प्रेमतीर्थ—यदि चित्त वासनाओं से खाली हो, तो फिर किस प्रकार का जन्म मिलेगा?

आत्मवेत्ता—तो फिर कोई जन्म न होगा। जब चित्त वासना से खाली होता है, तो मनुष्य के जन्म मरण के बन्धन से छूट जाता है, परन्तु चित्त वासनाओं से खाली उस समय तक नहीं हो सकता, जब तक मनुष्य सकाम कर्मों को छोड़ कर निष्काम कर्म कर्त्ता नहीं बनता। इसीलिये निष्काम कर्म को, सकामता से, तरजीह दी गई है।

विश्वम्भर—यदि मनुष्य निष्काम कर्म ही किया करे, तो क्या फल न चाहने की वजह से कर्म फल से वंचित रहेगा?

आत्मवेत्ता—कदापि नहीं, मनुष्य चाहे इच्छा करे या न करे, कर्म का फल तो अवश्य मिलता ही है। वेद में कहा गया है:—

"कर्म का फल मिलना अनिवार्य है"

याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

(यजु० ४० । ८)

अर्थात् "ईश्वर ने अनादि प्रजा जीव के लिए ठीक ठीक कर्म फलों का विधान किया है।" जब कर्म फल देने का ठीक ठीक विधान किया गया है, तो फिर कैसे सम्भव है कि मनुष्य कर्म करके फल से वंचित रहे। चाहे सकाम कर्म करे चाहे निष्काम, फल तो प्रत्येक कर्म का मिलता है, परन्तु सकाम कर्म करने से हानि यह होती है, कि उस से बन्धन के मूल वासना की उत्पत्ति हो जाती है, जो मनुष्य को मरने जीने के चक्र में रखता है, इसीलिये मनुष्य को चेतावनी दी गई है कि ऐसे कर्म करे जो बन्धन के हेतु न हों।

विश्वम्भर—निष्काम कर्म को फल मिल भी जावे, तो भी सर्वसाधारण को उसकी उपयोगिता नहीं समझाई जा सकती।

"निष्काम कर्म की विशेषता"

आत्मवेत्ता—ज़रूर और बहुत सुगमता के साथ समझाई जा सकती है और वह इस प्रकार:—कल्पना करो कि एक गृहस्थ के घर में पुत्र का जन्म हुआ, उस गृहस्थ

ने पुत्र जन्म के साथ ही अनेक आशायें बाँधीं कि पुत्र बड़ा होकर बहुत धन कमायेगा, और उसे देगा, और उसकी बहुत सेवा सुश्रूषा करेगा, इत्यादि। सम्भव है कि, पुत्र उसके आशानुकूल अच्छा निकले और उस गृहस्थ की आशायें पूरी करे, परन्तु यह भी सम्भव है कि पुत्र सुपुत्र न हो और गृहस्थ की आशाओं की पूर्ति न हो और गृहस्थ को दुःख उठाना पड़े यह एक सकामवादी गृहस्थ का उदाहरण हुआ। अब एक दूसरा उदाहरण लो:—कल्पना करो कि एक दूसरे गृहस्थ के घर भी पुत्र का जन्म हुआ। यह गृहस्थ निष्कामता प्रिय है। इसलिये इसने उस पुत्र के साथ अपनी कोई इच्छा नहीं जोड़ी और अपना कर्त्तव्य समझा कि पुत्र की रक्षा करे और शिक्षा देकर अच्छा बना देवे, जैसा कि माता पिता का कर्त्तव्य है। अब कल्पना करो कि इतना यत्न करने पर भी पुत्र अच्छा न हुआ और उसने माता पिता को कुछ आराम नहीं दिया, तो इस सूरत में भी इस गृहस्थ को कोई कष्ट न होगा, इसलिये कि इसने पुत्र के साथ किन्हीं आशाओं को जोड़ा नहीं था, परन्तु यदि उनके सौभाग्य से पुत्र अच्छा हुआ और उसने इस गृहस्थ युगल को प्रसन्न किया और सभी प्रकार से उनके सन्तुष्ट करने की चेष्टा की, तो उस गृहस्थ को इस सेवा सुश्रूषा से पहिले गृहस्थ

की अपेक्षा कहीं अधिक सुख मिलेगा। क्योंकि आशा करने पर कुछ मिल जाना यदि सुखप्रद है, तो विना आशा किये ही यदि कुछ मिल जावे, तो वह उससे भी अधिक सुखप्रद होता है। इन दोनों सकाम और निष्कामवादी गृहस्थों के उदाहरण से देख लिया गया कि निष्कामवादी गृहस्थ को दोनों सूरतों में से, चाहे पुत्र अच्छा हो या न हो, किसी सूरत में भी दुःखी नहीं होना पड़ा, जब कि पहिले सकामवादी गृहस्थ को पुत्र के अच्छा न होने पर क्लेशित होना पड़ा था, क्योंकि उस सूरत में उनकी आशा के विरुद्ध नतीजा निकला था।* ये रोज़ मर्रा की बातें हैं, और इन्हें सर्वसाधारण अच्छी तरह से समझते और जानते हैं, कि कौनसी सूरत अच्छी और अनुकरणीय है। अर्थात् किसी कर्म में आशाओं का जोड़ना अच्छा है, या कर्म का विना किसी आशा से सम्बन्धित किये कर्त्तव्य समझ कर करना अच्छा है। कर्म के इस विवरण से भली भांति यह बात स्पष्ट हो गई कि सकाम कर्म से एक

---

* आशा ही दुःख का मूल है, इस बात को एक उर्दू के कवि ने बहुत अच्छी तरह प्रदर्शित किया है:—

"रहती थी यास§ दिल में तो खटका न था कोई।
उम्मीद ही ने डाल रखा है अज़ाब में॥"

§यास=निराशा।

प्रकार का अभ्यासांश उत्पन्न होता है, जिसका नाम वासना है, और कहा जा चुका है कि जब तक मनुष्य के चित्त में यह वासना रहती है, तब तक वह आवागमन से छूट नहीं सकता, यही सबब है कि दूसरी गति को प्राप्त सकाम कर्म कर्त्ताओं को चान्द्रमसी दशा प्राप्त करके फल समाप्त होने पर फिर लौटना पड़ता है।

तत्त्ववित्त—दूसरी गति प्राप्त प्राणियों को जब लौटना पड़ता है, तो किस प्रकार से उन्हें लौट कर फिर कर्म करने के लिये बाधित होना पड़ता है ?

आत्मवेत्ता—चान्द्रमसी दशा को प्राप्त जीव, कर्म क्षीण होने पर जो पुनर्जन्म ग्रहण करते हैं, तो उनके लौटने का वही क्रम होता है, जिस क्रम से उन्होंने उस दशा को प्राप्त किया था। कुछ भेद अवश्य होता है—विवरण इस प्रकार है:—

"दूसरी गति प्राप्त जीवों के लौटने का क्रम"

(१) चान्द्रमसी दशा से आकाशीय दशा प्राप्त करते हैं।

(२) आकाशीय दशा से वायवीय (पैतृक) दशा को पाते हैं।

(३) वायवीय दशा से धूम्र दशा को पहुँचते हैं।

(४) धूम्र दशा से अभ्र (बादलों के सूक्ष्म रूप) अवस्था लाभ करते हैं।

(५) आप्रीय दशा से मेघ (बरसने वाले बादल) के साथ अन्न के द्वारा मनुष्य के शरीर में पहुँचते हैं, और वीर्य्य के साथ रज से मिल कर माता के शरीर में गर्भ रूप धारण करके मनुष्य रूप में उत्पन्न होते हैं।

शीलभद्र—चान्द्रमसी दशा को प्राप्त जीवों के साथ सूक्ष्म शरीर रहता है या नहीं और उन्हें स्थूल शरीर कब प्राप्त होता है ?

आत्मवेत्ता—मनुष्य का जब तक वासना से छुटकारा न हो, शरीर से भी छुटकारा नहीं हो सकता —चान्द्रमसी दशा को प्राप्त जीव सूक्ष्म शरीर के साथ ही उस अवस्था को प्राप्त होते हैं। उस अवस्था को प्राप्त होने का भाव यह है, कि उन्हें स्थूल शरीर भी मिल गया।

शीलभद्र—स्वर्ग प्राप्ति का तात्पर्य्य क्या है ? क्या इसी चान्द्रमसी दशा को प्राप्त जीव स्वर्ग प्राप्त कहे जाते हैं।

आत्मवेत्ता—हां, इसी चान्द्रमसी दशा को प्राप्त जीव स्वर्ग प्राप्त जीव समझे जाते हैं। एक जगह बतलाया गया है कि स्वर्ग लोक में समस्त शरीर के साथ जीव उत्पन्न होता है।*

---

* शतपथ ब्राह्मण ४ । ६ । १ । १ में लिखा है—

"सह सर्व तनुरेव यजमानोऽमुष्मिंल्लोके संभवति।"

अर्थात् स्वर्ग लोक में जीव शरीर के साथ ही पैदा होता है।

शीलभद्र—इस प्रकार तो वे मनुष्य ही हो गये, फिर उनमें और मनुष्यों में अन्तर क्या रहा ?

आत्मवेत्ता—यह ठीक है, उनमें तथा अन्य मनुष्यों में शरीरों की दृष्टि से कुछ अन्तर नहीं है—उन्हें उच्च-कोटि का मनुष्य ही समझना चाहिये।

मनुष्यों के भेद

प्रेमतीर्थ—क्या मनुष्य भी कई प्रकार के होते हैं ? यदि हां तो कितने प्रकार के ?

आत्मवेत्ता—मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं:—(१) प्रथम कोटि के मनुष्य वे होते हैं, जो केवल सुखों का उपभोग करते हैं। उनका पाप से सम्पर्क न होने से उन्हें किसी प्रकार का दुःख भी दुःखित नहीं कर सकता। इन्हीं का नाम देव है। (२) दूसरे प्रकार के मनुष्य वे होते हैं जो पुण्य कर्मों के साथ समान मात्रा या न्यूनांश में पाप कर्म भी रखते हैं। और ऐसे प्राणी मनुष्य कहलाते हैं। (३) तीसरी कोटि के मनुष्य वे होते हैं जो पापमय जीवन रखते हैं। न्यूनांश में जिन के पुण्य कर्म होते या बिलकुल नहीं होते। ऐसे ही प्राणी दस्यु, राक्षस और पिशाच आदि नामधारी होते हैं। इनमें से सकाम कर्त्ता जीव जिन्होंने दूसरी गति को प्राप्त किया है,

प्रथम श्रेणी के मनुष्यों में होते हैं। और उनकी "देव" संज्ञा होती है।

"अन्न के द्वारा जीव क्यों आता है"

शीलवती—अन्न के द्वारा जीव मनुष्य शरीर में क्यों पहुँचता है, विना अन्न के माध्यम के क्यों नहीं पहुँच जाता?

आत्मवेत्ता—शरीर का आदि उपादान "कलल रस" (Proto Plasm), मनुष्य शरीर में नहीं बनता, किन्तु वनस्पतियों ही में बना करता है। इसीलिये मनुष्य शरीर में उत्पन्न होने वाले इस जीव के लिये अन्न (वनस्पति आदि) का आश्रय लेना पड़ता है।*

हर्षवर्धन—जीव गर्भ में कब आता है?

"गर्भ में जीव कब आता है"

आत्मवेत्ता—जीव वीर्य के साथ, पिता के शरीर द्वारा माता के शरीर में पहुँच कर रज से मिल कर गर्भ की स्थापना का कारण बनता है। यदि जीव न हो, तो न गर्भ की स्थापना हो, और न स्थापित गर्भ की वृद्धि।

हर्षवर्धन—ऐसा क्यों है? एक पश्चिमी विद्वान्‡ ने

---

* अन्नादि के आश्रय लेने का तात्पर्य यह नहीं है, कि जीव वनस्पतियों की योनि में जन्म लेता है, किन्तु आकाशादि की भांति उसका अन्न से केवल सम्बन्ध होता है।
(वेदान्त ३-१-२४)

‡ Riddle of Universe by E. Heackel.

तो यह लिखा है, कि उत्पत्ति के बाद बालक में जीव उस समय आता है, जब बालक बोलने लगता है।

आत्मवेत्ता—जगत् में वृद्धि दो प्रकार से होती है, एक भीतर से, जैसे वृक्षादि की, और दूसरी बाहर से जैसे पत्थर, लोहा आदि की, इस भेद का कारण जीव का भाव और अभाव है। जिनमें जीव होता है, भीतर से बढ़ते हैं, परन्तु जिन में जीव नहीं होता, वे वस्तुयें बाहर से बढ़ती हैं, भीतर से नहीं बढ़ सकतीं। गर्भ की वृद्धि भीतर से होती है। इसलिये उसमें जीव की सत्ता का मानना अनिवार्य्य है। यह बात कि बालक में जीव उस समय आता है, जब वह बोलने लगता है, अनर्गल है। इसका अर्थ यह हुआ कि बोलने से पहले बालक जो भी क्रियायें, हाथ पांव हिलाना, श्वांस लेना, खाना पीना, सोना, जागना आदि करता है, वे सब जीव रहित मिट्टी के लोथड़े की हैं। यदि ऐसा ही है, तो मिट्टी, ईंट, पत्थर या लोहे के खम्भे में ये सब क्रियायें क्यों नहीं होती दिखाई देतीं? और यदि बोलने पर ही जीव का शरीर में होना निर्भर हो, तो गूंगे आदमी को मरण पर्य्यन्त जीव रहित ही समझने के लिये बाधित होना पड़ेगा।

वीरभद्र—क्या उत्पन्न होने वाला जीव पहिले पिता

“जीव पहिले पिता के शरीर में क्यों जाता है?”

के शरीर में जाता और तब माता के शरीर में आता है ? यह बात तो नई-सी मालूम होती है ।

आत्मवेत्ता—बात चाहे नई-सी मालूम होती हो परन्तु शास्त्र प्रतिपादित, और शास्त्र भी ऐसे जिन्हें ऋषियों ने अपने अनुभव से लिखा है, जैसे उपनिषद्*—प्रत्येक मनुष्य का अनुभव भी इसी का पोषक है, यह बात प्रायः सभी जानते और मानते हैं, कि क्षेत्र में पड़ने से बीज ही उगा करता है, क्षेत्र में उगने का सामर्थ्य नहीं है, हाँ उसकी सहायता उगने के लिए अनिवार्य है । जब इस प्रकार से वृक्ष या शरीर के निर्माण का कारण बीज (वीर्य्य) ही है, और वही भीतर से क्रमशः बढ़ता हुआ वृक्ष या शरीर के रूप में पहुँच जाया करता है, तो फिर यह मानने के लिये मजबूर होना पड़ता है, कि जीव को

---

* (क) जीव औषधियों के द्वारा वीर्य्यरूप होकर स्त्री के शरीर में जाता है (छन्दोग्योपनिषद् ५ । १० । ५)

(ख) “ते पृथ्वीं प्राप्यान्नं भवन्ति ते पुनः पुरुषाग्नौ हूयन्ते ततो योषाग्नौ जायन्ते”। अर्थात् पृथ्वी को प्राप्त होकर अन्न होते हैं और (अन्न के द्वारा) पुरुष रूप अग्नि में जाते हैं, तब स्त्री रूप अग्नि कुंड में वे (जीव) जाते हैं ।

(बृहदारण्यकोपनिषद् ६ । २ । १६)

(ग) वेदान्त ३ । १ । २६ में भी इसकी पुष्टि की गई है ।

सत्ता बीज (वीर्य्य) ही में होनी चाहिये, इस लिए जीव का उत्पन्न होने के लिये गर्भ की स्थापनार्थ प्रथम मनुष्य शरीर में आकर वीर्य्य के साथ स्त्री के शरीर में पहुँच कर रज से मिल कर गर्भ की स्थापना का कारण बनना तर्क और प्रमाण दोनों से समर्थित है।

"गर्भ का दंड ये जीव क्यों भोगते हैं ?"

श्री हर्ष—गर्भ में जीव का आना एक प्रकार का दण्ड समझा जाता है, तब दूसरी गति को प्राप्त जीव, जिन के बुरे कर्म नहीं होते, क्यों यह दण्ड भोगते हैं ?

आत्मवेत्ता—कहा जा चुका है, कि सकाम कर्म से जन्म मरण का कारण रूप वासना मनुष्यों में हुआ करती है, और चान्द्रमसी दशा में पहुँचने वाले जीवों के साथ भी यह उत्पन्न वासना उनके सूक्ष्म शरीरों में निहित रहती हैं, कर्म फल क्षीण होने पर जीवों को इसी वासना के कारण, माता के गर्भ में आना पड़ता है। जन्म का कारण वासना, स्वयमेव उन्हीं जीवों की उत्पन्न की हुई होती है, इसलिये असाक्षात् रीति से उनके कर्म ही इस जन्म का मुख्य कारण होते हैं, यदि वे सकामप्रिय न होते तो यह वासना भी उनके गले न मढ़ती। भिन्न-भिन्न प्रकार की वासनाओं के कारण, ये जीव अपनी-अपनी वासनानुकूल भिन्न लोकों में पहुँचते, और वासनाओं

की विभिन्नता के कारण ही, प्राप्त लोकों से लौटने पर, भिन्न स्थानों पर, जन्म पर जन्म लिया करते हैं।

"कितना समय चान्द्रमसी दशा तक पहुँचने में लगता है ?"

देशप्रिय—जीव को कितना समय चान्द्रमसी दशा तक पहुँचने में लगा करता है ?

आत्मवेत्ता—समय की नाप तोल करने के लिये मनुष्यों ने जो समय के विभाग किये हैं, चान्द्रमसी दशा में पहुँचने का समय इतना अल्प होता है, कि उन विभागों में नहीं आता।*

देशप्रिय—जब जीव रात्रि-पक्ष षाण्मासादि में होकर चान्द्रमसी दशा को प्राप्त करते हैं, तब तो एक वर्ष से भी अधिक समय उन्हें उस अवस्था तक पहुँचने में लगना चाहिये।

आत्मवेत्ता—धूम्र, रात्रि, पक्षादि, समय की नहीं, अपितु प्रकाश की मात्रा दिखलाने के लिये प्रयुक्त हुये हैं—इनके द्वारा क्रमशः प्रकाश की मात्रा-वृद्धि दिखलाई गई है।

यह प्रश्नोत्तर अभी समाप्त नहीं होने पाये थे, कि अचानक एक व्यक्ति ने बड़े मधुर स्वर से भक्ति के भाव

---

* वेदान्त ३। १। २३ में कहा गया है कि आकाशादि से चिरकाल तक सम्बन्ध मानना ठीक नहीं है।

में डूब कर गाना शुरू किया। आत्मवेत्ता सहित सभी संघ में उपस्थित सज्जनों का ध्यान उधर चला गया और सभी चित्त लगा कर उसका गाना सुनने लगे—

जीवन ! बन तू फूल समान

पर उपकार सुरभिसे सुरभित सन्तत हो सुखदान। जीवन०
स्वच्छ हृदय तो खिलजा प्यारे! तू भी परम प्रेम को धारे।
सुखदाई हो सब का जग में, पा सबसे सम्मान ॥ जीवन ०
कठिन कण्टकों के घेरे में, दारुण दुःखदायी फेरे में।
पड़कर विचलित कहीं न होना, बनना नहीं अजान ॥जी०
शत्रु मित्र दोनों का हित हो, पावन यह तेरा सब व्रत हो।
मधु दाता बन सब का प्यारा, तजकर भेद विधान ॥जीव०
दे तू सुरभि* टूटने पर भी, पैरों तले टूटने पर भी।
इस विधि से प्रभु की माला में, पा ले प्रिय स्थान ॥
जीवन ! बन तू फूल समान

भजन सुन कर प्रत्येक व्यक्ति अपनी अवस्था पर विचार करने लगा और गम्भीरता के साथ प्रभु से याचना करने लगा कि उसकी अवस्था का सुधार हो। ऋषि आत्मवेत्ता के चेतावनी देने पर फिर संघ का कार्य्य प्रारम्भ हुआ, और एक देवी ने नम्रता के साथ प्रश्न किया:—

* सुगन्धि।

वसन्ती देवी--कहा यह जाता है, कि मनुष्य जब यहां मरता है तो मृत्यु के साथ उसके दो शरीर (१) स्थूल शरीर (Dense body) (२) आकाशीय छाया शरीर (Ethereal Double) यहीं नष्ट हो जाते हैं अर्थात् मरने पर उससे तीन क्षुद्र द्रव्य (Lower Principles) (१) शरीर (२) जीवन का साधन रूप आकाशीय छाया शरीर हमेशा के लिये पृथक् हो जाते हैं। मरकर वह काम लोक में पहुँचता है। काम लोक में उसके पास केवल एक शरीर जिसे इच्छा (Shell-Desire body or body of Astral) कहते हैं, रहता है। और प्रथम के ३ क्षुद्र द्रव्य नष्ट होकर इस नये लोक में इस शरीर के साथ बाक़ी चार उच्च द्रव्य काम रूप (Body of Kama), आत्मा, बुद्धि और मन रहा करते हैं। कामलोक से पृथक् होने पर (इस पृथकता का नाम द्वितीय मृत्यु (Second Death) है) वह देवाचन (Abode of Gods or the land of Bliss) में पहुँच जाता है। जब प्राणी कामलोक को छोड़ता है तो एक सुनहरी पुल, जो सात सुनहरी पर्वतों के मध्य में पड़ता है (Golden bridge leading to the seven golden Mountains)—पार करना होता है। द्वितीय मृत्यु के बाद देवाचन में पहुँचने से पूर्व अचेतन अवस्था (Pre-de-

"दूसरी गति का एक और विवरण"

vachanic unconsciousness) होती है, परंतु देवाचन में पहुँचने पर उसे चेतना प्राप्त हो जाती है और इस प्रकार देवाचन, मानो चेतनावस्था (State of consciousness) है। जब वे कारण जो प्राणी को देवाचन में ले गये थे, समाप्त हो जाते हैं, तब जीव को फिर प्राकृतिक स्थूल जगत् में आने की इच्छा प्राप्त होने लगती है, और इस इच्छा के उत्पन्न होने पर उसे फिर इस संसार में जन्म लेकर अपनी पुरानी जन्म वासनाओं से, जो यहीं पहले जन्म में उत्पन्न होकर उसके कामलोक में जाने पर, नष्ट न होकर, तिरोहित अवस्था में रहती हैं, भेंट करनी पड़ती हैं।❀

आत्मवेत्ता—पृथक् २ व्यक्तियों की वर्णन शैली पृथक् पृथक् हुआ करती है। यह जो कुछ, देवी! तुमने सुनाया इसमें कुछ तो उपनिषदों का तथ्य है, और कुछ साम्प्रदायिकवाद, सुनहरी पुल से गुज़रना आदि तो साम्प्रदायिकवाद हैं। परन्तु देवाचन से लौटने का अभिप्राय चन्द्रलोक से लौटने का है। और पुरानी पाप वासना का तात्पर्य उन्हीं वासनाओं से है, जो सकाम कर्म से उत्पन्न हुआ करती हैं और प्राणी को पुनः आवागमन के चक्र में लाने का कारण बनती हैं। यह उपनिषदों का

❀ Death and after by Dr. Annie Besent.

तथ्य (सच्चाई) है, और इस प्रकार देखने से इस वर्णन और जो कुछ हमने सुनाया उसमें अधिक अन्तर नहीं है और परिणाम दोनों का निश्चित रीति से कहा जा सकता है, कि एक ही है।

इतना उपदेश देने के बाद आज का संघ समाप्त हुआ। और संघ की समाप्ति के साथ ही मरने के बाद दूसरी गति की कथा भी समाप्त हुई।

चौथा परिच्छेद

छठा संघ

मरने के बाद की तीसरी गति

संघ संगठित है—शान्ति का वायु प्रवाहित है—सुन्दर सुहावने पुष्पों की भीनी २ महक वाटिका में आरही है—आत्मवेत्ता ऋषि की तपोभूमि में पग धरते ही हृदय आस्तिकता के भावों से पूरित हो उठता है—ईश्वर के आह्लादप्रद प्रेम से चित्त आह्लादित हो जाता है—इस प्रकार के वातावरण में बैठे हुए अनेक नरनारी मृत्यु की अन्तिम समस्या सुनने को उत्सुक हो रहे हैं। आत्मवेत्ता के आने और व्यास गद्दी पर आसीन होने पर सब के मुखड़े प्रसन्नता के साथ खिल उठते हैं—हृदय को शान्ति देने वाली वाणी से ऋषि ने अपना

शिक्षा प्रद उपदेश आरम्भ किया—

“मरने के बाद तीसरी गति”

आत्मवेत्ता—मरने के बाद की दो गतियों का आप हाल सुन चुके हैं। आज तीसरी और अन्तिम गति की बात कहनी है। जो पुरुष निष्काम प्रिय हैं और निष्काम कर्म करना ही जिन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बना रक्खा है, और जो श्रद्धामय और तपस्वी जीवन व्यतीत करते हैं, ऐसे पुरुष जीवन काल ही में जीवनमुक्त कहलाते हैं और जब मरते हैं, तब आवागमन (मृत्यु) के बन्धन से छूट कर मुक्त हो जाते हैं—वे मर कर किस क्रम से ब्रह्म को प्राप्त करते हैं, उसका विवरण इस प्रकार है:—

उसका क्रम

(१) प्रथम वे आर्चिषी* दशा को प्राप्त करते हैं।
(२) आर्चिषी दशा से आन्हिकी (दिन की) दशा को।
(३) उससे पाक्षिकी (शुक्ल पक्ष की) दशा को।
(४) उससे उत्तरायणा§ षाण्मासिकी दशा को।
(५) उससे संवत्सरी (पूरे वर्ष की) दशा को।
(६) उससे सौरी (सूर्य्य समान) दशा को।
(७) उससे चान्द्रमसी दशा को।

---

* अर्चि=अग्नि की ज्वाला, लपट।

§ जिन छः मासों में सूर्य उत्तर की ओर रहता है।

(८) उससे वैद्युती (बिजली के समान) दशा को।
(९) उससे ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं।

इस अवस्था को प्राप्त कर लेना मनुष्य के जीवनोद्देश्य की चरम सीमा और मनुष्य की अन्तिम गति है।

ये अवस्थायें भी क्रमशः प्रकाश की वृद्धि को प्रकट करती हैं। वैद्युती दशा को प्राप्त करने के बाद मनुष्य उस ज्योति को प्राप्त कर लेता है, जिस ज्योति को अलौकिक और विकार रहित ज्योति* कहा जाता है और जिस ज्योतिमय अवस्था के लिये कहा जाता है कि वहां अग्नि, विद्युत्, चन्द्रमा, तारे और सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच सकता।‡ संसार के जितने भी उत्तम से उत्तम प्रकाश हैं, उनमें से किसी को भी उस दिव्य और अलौकिक ज्योति की उपमा नहीं दी जा सकती। इतना कह कर ऋषि चुप हो गये। आत्मवेत्ता ऋषि के इस उपदेश के सुनने से संघ में उपस्थित प्रायः सभी नर-नारियों के मुखड़ों से छाया हुआ गम्भीरता का भाव प्रदर्शित होने लगा, मानों उनमें से प्रत्येक इसी अवस्था को प्राप्त करने का उत्सुक है। कुछ देर तक सन्नाटा-सा

---

* "ज्योतिरिवाधूमकः"—(कठोपनिषद् ४। १३)।
‡ मुण्डकोपनिषद् २। २। १०।

छाया रहा और जो जहां था, गतिशून्य-सा दिखाई देता था, मानों कोई टस से मस ही नहीं होना चाहता है। यह दशा बहुत देर तक नहीं रही । अन्त को मौन मुद्रा टूटी और उपदेश के सम्बन्ध में अनेक शङ्काओं के समाधान करने की इच्छा जागृत हुई और इस प्रकार संघ में से एक व्यक्ति बोलाः—

"सौरी और चान्द्रमसी दशाओं का भेद"

उमाकान्त—यदि यह अवस्थायें क्रमशः प्रकाश वृद्धि ही प्रकट करती हैं, तो सौरी दशा के बाद चान्द्रमसी दशा क्यों है ? सूर्य्य का प्रकाश तो चन्द्रमा से अधिक ही होता है ?

आत्मवेत्ता—बेशक ! सूर्य्य का प्रकाश चन्द्रमा से अधिक होता है, परन्तु दोनों के प्रकाशों में प्रकार का भेद है । सूर्य्य का प्रकाश उष्णता पूर्ण होता है, परन्तु चन्द्रमा के प्रकाश में शीतलता होती है । उष्णता उद्विग्नता (अशान्ति) का और शीतलता (शान्ति का द्योतक है, इसलिये चन्द्रमा* सुखप्रद समझा जाता है, अतः स्पष्ट है कि चन्द्र का प्रकाश सूर्य्य के प्रकाश से, प्रकार की दृष्टि से, अच्छा समझा जाता है। इसके अतिरिक्त

* चदि आह्लादे धातु से "चन्द्र" शब्द सिद्ध होता है—इसीलिये चन्द्रमा आह्लादप्रद माना जाता है ।

यहां चान्द्रमसी शब्द, नक्षत्र विशेष से सम्बन्धित अवस्था प्रकट नहीं करता, किन्तु उस प्रकाश का प्रकाशक है जो सूर्य के प्रकाश से अच्छा हो। इसी प्रकार उस से भी अच्छे प्रकाश की द्योतक वैद्युती अवस्था है।

"ब्रह्मलोक क्या है?"

चन्द्रकान्ता—ब्रह्मलोक क्या किसी स्थान विशेष का नाम है, जो मुक्त जीवों के निवास का स्थान समझा जाता है?

आत्मवेत्ता—ब्रह्मलोक किसी स्थान विशेष का नाम नहीं है। न ही मुक्त जीव किसी एक स्थान विशेष पर एकत्रित निवास करते हैं। ब्रह्मलोक का भाव यह है कि प्राणी उस अवस्था को प्राप्त कर लेवे, जिसमें उसकी ब्रह्म की समीपता और प्रकृति से अत्यन्त निवृत्ति होती है, ब्रह्म की समीपता का भाव आनन्द की प्राप्ति और प्रकृति से निवृत्ति का तात्पर्य दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति से है। इस अवस्था को प्राप्त जीव पूर्ण स्वतन्त्र होते हैं। किसी प्रकार का बन्धन नहीं होता और इच्छानुसार जहाँ चाहें विचरते हैं।

"क्या मुक्त जीव कोई शरीर रखते हैं?"

चन्द्रकान्ता—क्या ये जीव सूक्ष्म और कारण शरीर भी नहीं रखते? स्थूल शरीर तो आवागमन के बन्धन से रहित होने पर रह नहीं सकता।

आत्मवेत्ता—नहीं ! मुक्त जीव किसी प्रकार का शरीर नहीं रखते, विशुद्ध मुक्तात्मा प्रत्येक प्रकार के मल और विकारों से रहित हो जाता है, इसीलिये प्राकृतिक बन्धन उसे पीड़ित नहीं कर सकते ।

"मुक्त जीव के साथ क्या जाता है ?"

विद्याभूषण—तो क्या इसका मतलब यह है कि मुक्त जीव के साथ कुछ भी नहीं जाता ?

आत्मवेत्ता—नहीं मुक्त जीव के साथ उसके किये हुए निष्काम कर्म और उपार्जित विज्ञान जाते हैं इनके सिवाय और कुछ नहीं जाता ।* इन्हीं कर्म और विज्ञान के योग का नाम "धर्म" है ।

---

* (क) मुण्डकोपनिषद् में कहा है:—

गताः कलाः पञ्च दश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रति देवतासु ।
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकी भवन्ति ॥
॥ मु० ३ २।७।

अर्थात् जीवन मुक्त प्राणी जब शरीर छोड़ता है, तब उसकी १५ कलायें जिनसे तीनों प्रकार के शरीर बनते हैं। अपने कारण में, और सम्पूर्ण इन्द्रियाँ भी अपने २ कारणों में लीन हो जाती हैं—इस प्रकार जब एक मात्र विशुद्ध आत्मा रह जाता है, तब बतलाते हैं कि वह आत्मा कर्म और विज्ञान के साथ परम अव्यय ईश्वर को प्राप्त कर लेता है ।

(ख) बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है कि शरीर छोड़ने वाले के साथ—

"मुक्ति का कारण"

उपमन्यु—मुक्ति ज्ञान का फल है या कर्म का ?

आत्मवेत्ता—न केवल ज्ञान का और न केवल कर्म का-किंतु ज्ञान और कर्म्म के समुच्चय का फल मुक्ति है*—कर्म की उपेक्षा करके ज्ञान का आश्रय लेना या ज्ञान की उपेक्षा करके-केवल कर्म का सहारा ढूंढना-दोनों मनुष्य को अन्धकार में लेजाने वाले हैं।‡

"मुक्ति से लौटना"

उपमन्यु—यदि मुक्ति ज्ञान और कर्म के समुच्चय का फल है, तो नित्य नहीं हो सकती—इसी लिये नित्य मुक्ति मानने की इच्छा से अनेक आचार्य्य मुक्ति को केवल ज्ञान का फल मानते हैं और वे कर्म को अविद्या कह कर त्याज्य समझते हैं।

आत्मवेत्ता—मुक्ति केवल ज्ञान का फल नहीं है,

"तं विद्याकर्मणि समन्वारभेते पूर्व प्रज्ञाञ्च"—विद्या(ज्ञान), कर्म और पूर्व प्रज्ञा (वुद्धि=ज्ञान) जाते हैं।

(देखो बृ० ४।४।२)

* विद्यां चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयं सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥

(ईशोपनिषद् मन्त्र ११)

अर्थात् ज्ञान और कर्म दोनों को जो प्राणी साथ २ काम में लाता है, वह कर्म से मृत्यु को पार करके, ज्ञान से अमरत्व को प्राप्त करता है।

‡ देखो ईशोपनिषद् मन्त्र ६।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है – वेद, उपनिषद् और गीता आदि सभी सत् शास्त्र, मुक्ति का कारण ज्ञान के साथ कर्म को भी समझते हैं। गीता के एक प्रश्नोत्तर का विवरण सुनाते हैं:—

"कृष्णार्जुन संवाद"

अर्जुन—हे जनार्दन! यदि आपके मत में कर्म से ज्ञान श्रेष्ठ है, तो मुझे क्यों घोर कर्म (युद्ध) में लगाते हो, आपके रिले-मिले से वाक्यों से तो मेरी बुद्धि और मोह (भ्रम) में पड़ती है—निश्चय के साथ वह एक बात कहो–जिससे मेरा कल्याण होवे।

कृष्ण—संसार में दो प्रकार की श्रद्धा है—(१) सांख्याचार्यों की ज्ञान योग से उत्पन्न और (२) योगियों की कर्म योग से–न तो कर्मों के न करने ही से कोई नैष्कर्म्य के फल को पाता है और न त्याग से ही सिद्धि प्राप्त होती है—क्योंकि कोई कभी क्षण भर भी कर्म न करता हुआ नहीं रह सकता है। प्रकृति के गुणों (सत्व, रजस्, तमस्) से विवश होकर सब को कर्म करने पड़ते हैं–जो कोई मूढ पुरुष कर्मेन्द्रियों को रोक कर मन से इन्द्रियों के विषय का ध्यान करता है, वह मिथ्या आचार वाला होता है। हाँ जो आसक्ति रहित मनुष्य मन से इन्द्रियों को वश में करके कर्मेन्द्रियों से कर्मयोग

को अनुष्ठान भी करता है, वह विशेषता वाला होता है। अकर्म से कर्म श्रेष्ठ है, इसलिये नियत कर्म कर—क्योंकि बिना कर्म तो तेरी देह यात्रा भी सिद्ध न होगी—प्रजापति ने, प्रारम्भ में यज्ञों सहित प्रजाओं को उत्पन्न करके, उनको उपदेश दिया कि इस यज्ञ से सब कुछ उत्पन्न करलो, यह तुम्हारी मनोवांछित कामनाओं का पूर्ण करने वाला होगा। इस यज्ञ से तुम यज्ञ सम्बन्धी अग्नि, वायु आदि देवों को प्रसन्न करो, वे देव तुमको प्रसन्न करेंगे।

इस प्रकार एक दूसरे को प्रसन्न करने ही से कल्याण हो सकता है। यज्ञ न करके जो मनुष्य देवों का भाग, उन्हें दिये बिना, यज्ञ से उत्पन्न भोगों को भोगता है, वह चोर है। यज्ञ करके, यज्ञ शेष का भोजन करने से मनुष्य पापों से छूटता है, परन्तु वे मनुष्य जो केवल अपने लिये ही भोजन बनाते है, वे भोजन नहीं अपितु पाप ही को खाते हैं। अन्न से प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्न बादलों से (वर्षा द्वारा) पैदा होता है और बादल यज्ञ से बनते हैं, यज्ञ, कर्म से होता है, कर्म वेद से उत्पन्न होते हैं और वेद अविनाशी ब्रह्म से प्रकट होते हैं, इस प्रकार सर्वव्यापक ईश्वर यज्ञ में प्रतिष्ठित है। जो प्राणी ईश्वर के चलाये हुए इस चक्र के अनुकूल व्यवहार

नहीं करता, वह पापी और इन्द्रियों का दास है, उसका संसार में जीना व्यर्थ ही है। इसलिये तू कर्म में लिप्त हुए बिना निरन्तर पुरुषार्थ कर। इस प्रकार कर्म-जन्य वासना में लिप्त हुए बिना, जो मनुष्य कर्म करता है, वह परमेश्वर को प्राप्त कर लेता है। जनकादि ने कर्म ही से सिद्धि प्राप्त की थी लोक संग्रह पर ध्यान देते हुए भी तुझको कर्म करना चाहिये।*

आत्मवेत्ता—इस उत्तर से स्वयं योगिराज कृष्ण ने स्पष्ट रीति से कर्म को ईश्वर प्राप्ति का साधन बतलाया है और जनकादि का उदाहरण भी दिया है। ऐसी अवस्था में जो कर्म की उपेक्षा करके केवल ज्ञान का आश्रय लेते हैं वे उपनिषद् और वेदों के सिवा कृष्ण महाराज की शिक्षा का भी निरादर करते हैं, इस लिये ऐसे व्यक्तियों की बात ध्यान देने योग्य नहीं है। कर्म से जगत् बना तथा स्थित है और सारे काम जगत् के कर्म ही से चल रहे हैं। कर्म का निरादर करके तो कोई मनुष्य, जैसा श्रीकृष्ण ने भी उपर्युक्त उत्तर में कहा है, अपना जीवन भी स्थिर नहीं रख सकता।

सत्यकाम—जगत् में मनुष्यों का काम तो उनके

* यह कृष्णार्जुन-संवाद गीता के तृतीयाध्याय में अङ्कित है। (देखो श्लोक १ से २० तक)

"पुरुषार्थ और प्रारब्ध" प्रारब्ध से चला करता है, फिर कृष्ण महाराज ने यह कैसे कहा कि मनुष्य विना पुरुषार्थ से अपना जीवन भी स्थित नहीं रख सकता ?

आत्मवेत्ता—पुरुषार्थ और प्रारब्ध का झगड़ा अधिकतर मनुष्यों की अज्ञता पर निर्भर है।

"कर्म की अवस्थायें" कर्म की तीन अवस्थायें हैं (१) जब मनुष्य कर्म करता है, तब कर्म की पहली अवस्था होती है, उसमें कर्म को "क्रियमान" कहते हैं। (२) जब कर्म करने की, क्रियमान अवस्था समाप्त हो जाती है, तब कर्म की दूसरी अवस्था होती है और उसमें उसका नाम "संचित" होता है। (३) जब संचित कर्मों का फल मिलने लगता है, तब कर्म की तीसरी अवस्था होती है और उस अवस्था में कर्म का नाम "प्रारब्ध" हो जाता है।* अतः स्पष्ट है कि प्रारब्ध कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है, किन्तु किये हुये कर्मों की ही एक अवस्था है, यदि मनुष्य पुरुषार्थ न करे, तो प्रारब्ध बन ही नहीं सकता।

---

* नीति में कहा है—पूर्वजन्म कृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते। तस्मात् पुरुषकारेण यत्नं कुर्य्यादतन्द्रितः॥ (पञ्चतन्त्र) होता है अर्थात् पूर्व किये कर्मों ही का नाम दैव (प्रारब्ध, तकदीर) इसलिये मनुष्य को यत्न पूर्वक पुरुषार्थ करना चाहिए।

जिज्ञासु—क्या हृदय की शुद्धि केवल ज्ञान से नहीं हो सकती? क्या हृदय की शुद्धि के लिये भी कर्म की आवश्यकता है?

आत्मवेत्ता—हाँ, हृदय की शुद्धि भी बिना कर्म के नहीं हो सकती। इसीलिये उपनिषद् में एक क्रिया का विधान है, जो यज्ञ और उसकी बाद की प्रार्थना से पूरी होती है। उसका विवरण इस प्रकार है। इस से साफ़ ज़ाहिर हो जायगा कि क्रियाकलाप के बिना अन्तःकरण की शुद्धि नहीं होती और शुद्धि न होने से बुद्धि कलुषित हो महत्ता प्राप्त करने में असमर्थ हो जाती है।

"ईश्वर प्राप्ति के अर्थ एक यज्ञ और एक प्रार्थना"

महत्वकांक्षी अमावस्या को यज्ञ करने की दीक्षा लेकर १५ दिन तक यम, नियम का पालन करते हुए प्रणव और गायत्री मन्त्र का जप करे। पूर्णिमा की रात्रि में नियत औषधियों * के मन्थ (रस) को दही और शहद मिलाकर एक पात्र में रक्खे और इस प्रकार घृत की आहुति अग्नि में देकर श्रुवे में बची हुई घृत की बूंदों को उसी औषधि के सार वाले पात्र में डालता

* अनेक औषधियां हैं, जिनके प्रयोग से चित्त शान्त होता है, उन्हीं का यहां संकेत किया गया है।

जावे । आहुति इन वाक्यों से देवेः—

(१) ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय स्वाहा ।

(२) वशिष्ठाय स्वाहा ।

(३) प्रतिष्ठाय स्वाहा ।

(४) सम्पदे स्वाहा ।

(५) आयतनाय स्वाहा ।

इसके बाद अग्नि-कुण्ड से हटकर अञ्जलि में घृत की बूंद मिश्रित उस मन्थ को लेकर इस प्रकार मानसिक प्रार्थना करेः—

"प्रार्थना की विधि"

"भगवन् ! आप अम‡ नाम वाले हैं, जगत् का आधिपत्य रखने के लिये आप में अमा (शक्ति) है। आप ज्येष्ठ, श्रेष्ठ और सर्वाधिपति हैं, आप कृपा करके मुझे भी ज्येष्ठ, श्रेष्ठ और अधिपति बनावें।" इस प्रार्थना के बाद निम्न प्रकार आचमन करेः—

"तत्सवितुर्वृणीमहे" इस से एक आचमन ।

"वयं देवस्य भोजनम्" इस से दूसरा आचमन ।

---

‡ गमन शील होने से ब्राह्माण्ड का नाम "अ" है—"म" के माने नापने या निर्माण करने के हैं। ईश्वर ब्रह्माण्ड का निर्माता है, इसलिये उसका नाम "अम" है उसकी शक्ति "अमा" कहलाती है।

"श्रेष्ठं सर्वधातमम्" इस से तीसरा आचमन।

"तुरं भगस्य धीमहि" इस से सब पी लेवे।

जिस पात्र में आचमन किया है, उसे शुद्ध करके और कुण्ड के पश्चिम भाग में बैठ कर मौनावलम्बी सर्व प्रकार की इच्छाओं से हृदय शून्य रखते हुये ईश्वर के ध्यान में लीन हो जावे। यदि यह लवलीनता पूरी हो जावे और आत्मा मातृरूप ब्रह्म की "अमा" (शक्ति और विभूति) का अनुभव करने लगे, तो कर्म को सफल समझे *। इस प्रकार यह तथा अन्य अनेक क्रियायें उपनिषद् और योग आदि शास्त्रों में हृदय की शुद्धि के लिये बताई गई हैं और साफ़ कह दिया गया है कि जल से शरीर, सत्याचरण से मन, विद्या और तप से आत्मा और ज्ञान से बुद्धि शुद्ध हुआ करती है।†

"मुक्ति की अवधि और उसके भेद"

सत्ययज्ञ—मुक्ति, कर्म और ज्ञान के समुच्चय का फल होने से अनित्य है, अनित्य होने से सावधि हुई, तो फिर उस की अवधि क्या है? और सब मुक्त जीवों की

* छांदोग्य उपनिषद् प्रपाठक ५, खंड ७, प्रवाक ४-८।

† देखो मनुस्मृति अध्याय ५, श्लोक १०:—
अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति॥

अवधि एक ही है या इस में कुछ विभिन्नता है ?

आत्मवेत्ता—मुक्ति में प्रवेश करने वाले जीव पांच श्रेणिओं में विभक्त हैं, उनका विवरण इस प्रकार है:—

सं०	मुमुक्षुओं के पद	मुक्ति की मात्रा	वर्ष विवरण	साधन
१	वसु	२२५० अहोरात्र[1] या ६। ब्रह्मवर्ष	१ नील ९४ खर्व ४० अर्ब वर्ष	ऋग्वेद
२	रुद्र	४५०० अहोरात्र या १२॥ ब्रह्म वर्ष	३ नील ८८ खर्व ८० अर्ब	ऋग्वेद+यजुर्वेद
३	आदित्य	९००० अहोरात्र या २५ ब्रह्म वर्ष	७ नील ७७ खर्व ६० अर्ब	ऋग्वेद+यजुर्वेद तथा सामवेद
४	मरुत	१८००० अहोरात्र या ५० ब्रह्म वर्ष	१५ नील ५५ खर्व २० अर्ब	चारों वेद

(१) ४३ लाख २० हजार वर्षों की एक चतुर्युगी होती है। २ हजार चतुर्युगी का एक अहोरात्र अर्थात् एक सृष्टि और एक महाप्रलय।

३० अहोरात्र का एक ब्रह्ममास और ऐसे १२ ब्रह्म मासों का १ ब्रह्म वर्ष और ऐसे १०० ब्रह्म वर्षों का एक परान्त काल होता है।

५ साध्य[2] ३६००० अहोरात्र
३१ नील १० खर्व चारों वेदों के
या १०० ब्रह्म वर्ष ४० अर्ब गुह्य—आदेश
(एक परान्तकाल)

प्राचीन शाल—मुक्ति के इन भेदों का कारण क्या है ?

"मुक्ति के भेदों का कारण"

आत्मवेत्ता—कारण का संकेत तो साधन के नाम से पहिले उत्तर में कर दिया गया है। एक व्यक्ति ने जिस ने केवल एक वेद का ज्ञान प्राप्त किया और उसी प्राप्त ज्ञान के अनुकूल आचरण किया, उस से उस के ज्ञान और कर्म अधिक हैं, जिसने दो वेदों का अध्ययन किया है। इसी प्रकार बराबर उत्तरोत्तर प्रत्येक श्रेणी में कर्म और ज्ञान की मात्रा अधिक होती गई है, इसी कर्म और ज्ञान के मात्रा भेद से मुक्ति मात्रा में भी भेद होते हैं।

प्राचीन शाल—तो जिन व्यक्तियों के ज्ञान और कर्म मात्रा में कम थे, उनकी मुक्ति ही क्यों होती है ?

आत्मवेत्ता—यह बात पहले कही जा चुकी है कि जब मनुष्य सकाम कर्म—जो वासना-उत्पादक होते हैं, छोड़-

(२) देखो छान्दोग्य उपनिषद् में मधु वाच्य ब्रह्मोपासना, जिस प्रकरण का नाम ब्रह्मोपनिषद् है। (छान्दोग्य प्रपाठक ३ खण्ड ६ से १० तक)

कर केवल निष्काम कर्म करने लगता है, तो उससे न केवल आइन्दा वासना नहीं बनती, किन्तु पिछली बनी हुई वासनायें भी नष्ट हो जाती हैं और जन्म मरण का कारण वासना ही है। इस लिए उपासक ज्ञान प्राप्ति के किसी दर्जे में भी क्यों न हो, जिस समय भी निष्कामता के प्रभाव से उसका चित्त वासना रहित हो जायगा, वह आवागमन के बन्धन से मुक्त होकर मुक्त हो जायगा। ऐसी अवस्था में ज्ञान और कर्म के समुच्चय के भेद से उसका फल रूप मुक्ति भी भेद वाली हो जाती है और यही भेद उपनिषद् में दिखलाया गया है।

"क्या मुक्ति के लिये वेदाध्ययन आवश्यक है?"

तपोनिधि—ऊपर मुक्ति के साधनों में से प्रत्येक साधन में एक न एक वेद का अध्ययन मुक्ति के प्राप्त करने के लिए आवश्यक दिखलाया गया है, क्या इनका मतलब यह है कि जिन्होंने वेद नहीं पढ़े हैं, उन की मुक्ति ही नहीं हो सकती?

आत्मवेत्ता—मुक्ति के लिए वेद का अध्ययन आवश्यक नहीं परन्तु वेद प्रतिपादित मुक्ति के साधनों का ज्ञान आवश्यक और अनिवार्य है। यह ज्ञान चाहे स्वयं वेद पढ़ कर प्राप्त किया जावे या वेदानुकूल ग्रन्थों के अध्ययन से उपलब्ध किया जावे। चाहे किसी श्रोत्रिय ब्रह्म-

निष्ठा से प्राप्त कर लिया जावे। वेद का ज्ञान प्राचीन ऋषियों की प्रचार संलग्नता (Missionary spirit) के कारण जगत् भर में फैल चुका था और अब भी फैला हुआ है। जहां कहीं भी मुक्ति के साधन, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, निर्लोभता, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर भक्ति आदि गुणों को देखो, तो समझ लो कि इनका आदि स्रोत वेद है और ये सब वेदोक्त ज्ञान ही हैं। इन गुणों का, यह समझे बिना भी कि ये वेद ज्ञान है, यदि कोई पालन करता है, तो वह भी अवश्य मुक्ति का अधिकारी हो सकता है चाहे वह किसी देश, जाति, रंग या मत में पैदा हुआ है।

सत्यव्रत—मृत्यु के बाद की दूसरी गति में सूर्य के दक्षिणायन और तीसरी गति में उत्तरायण की कही गई है। क्या इसका भाव यह है कि सूर्य्य के उत्तरायण होने की दशा ही में मरने से मुक्ति हो सकती है? अन्य अवस्थाओं में नहीं?

आत्मवेत्ता—किसी अवस्था में भी साधन सम्पन्न प्राणी की मृत्यु हो, मोक्ष का अधिकारी होने पर उसकी मोक्ष हो जायगी। दिन, रात, पक्ष, षाण्मासादि समय के किन्हीं विभागों में कोई न्यूनता या विशेषता नहीं।*

* "अतश्चायनेऽपि दक्षिणे" (वेदान्त दर्शन ४।२।२०)

सत्यव्रत—सात लोक जो कहे जाते हैं, वे कौन-कौन से हैं, उनका भाव क्या है ? इन्हीं लोकों में एक ब्रह्म लोक कहा जाता है, जिसकी कुछ बात पहले हो चुकी है।

"सात लोक"

आत्मवेत्ता—३३ देवताओं की गणना में आठ वसु हैं। वसु उन स्थानों का नाम है, जहां प्राणी बस सकते हैं, उन्हीं आठ वसुओं को ६ लोकों में विभक्त कर दिया है। उसका विवरण इस प्रकार है:—

८ वसु	७ लोक
(१) अग्नि	(१) पृथ्वी
(२) पृथ्वी	(२) वायु
(३) वायु	(३) अन्तरिक्ष
(४) अन्तरिक्ष	(४) आदित्य=(१, ५, ६ तीनों के स्थान में)
(५) आदित्य	
(६) द्यौः	(५) चन्द्रमा
(७) चन्द्रमा	(६) नक्षत्र
(८) नक्षत्र	(७) ब्रह्म लोक

इन में उपर्युक्त भांति आठ वसुओं के स्थान में १ से ६ तक लोक हैं और सातवां लोक ब्रह्म लोक है

अर्थात् दक्षिण मार्गगत मृत्यु उपासक के मुक्ति रूप फल में भी कोई बाधा नहीं है।

जो वसुओं से बाहिर है, प्राणी इन्हीं सात लोकों में से किसी न किसी लोक में रहता है। जब तक जीव आवागमन के बन्धन से नहीं छूटता, तब तक उसे इन्हीं १ से ६ तक के लोकों में रहना पड़ता है, परन्तु इस बन्धन से छूट कर ब्रह्म को प्राप्त करके ब्रह्मलोकवासी बन जाता है। यह कहा जा चुका है कि ब्रह्म विभु होने से सर्वदेशी है, इसलिये उसका कोई स्थान विशेष नहीं, इसलिये ब्रह्मलोक भी किसी स्थान विशेष का नाम नहीं है। ब्रह्म को प्राप्त कर के जीवात्मा जब ब्रह्मानन्द का अनुभव करने लगता है, उसको ब्रह्मलोक प्राप्त हुआ समझा जाने लगता है। इन्हीं सप्त लोकों के नाम एक और प्रकार से भी लिये जाते हैं और वे इस प्रकार हैं:—

सप्त लोक

(१) पृथ्वी = भूः
(२) अन्तरिक्ष = भुवः
(३) चन्द्रमा = स्वः
(४) वायु = महः
(५) नक्षत्र = जनः
(६) आदित्य = तपः
(७) ब्रह्म = सत्यम्

सत्यव्रत—इनमें नरक लोक का नाम कहीं नहीं आया ?

आत्मवेत्ता—जितनी भी भोग योनियाँ हैं, सब नरक ही हैं—इन के सिवा नरक किसी स्थान विशेष का नाम नहीं है।

यत्नमणि—"देवयान" और "पितृयान क्या हैं ?

आत्मवेत्ता—मृत्यु के बाद दूसरी गति प्राप्त प्राणियों के मार्ग का नाम "पितृयान" और तृतीय गति प्राप्त जीवों के मार्ग का नाम "देवयान" कहलाता है। ये कोई इस प्रकार के मार्ग नहीं हैं, जिन्हें हम मार्ग शब्द से पृथ्वी पर समझते हैं, परन्तु जीवों में क्रमशः प्रकाश की वृद्धि के जो दरजे होते हैं, उसी विकास क्रम का नाम "पितृयान" और "देवयान" है।

"क्या जीव १२ दिन के बाद जन्म लेता है ?"

तत्त्वदर्शी—क्या यह ठीक है कि मनुष्य मरने पर १२ दिन* के बाद जन्म लेता है ?

---

* १२ दिन के बाद पैदा होने का विचार भ्रमात्मक है, और उपनिषद् की शिक्षा के विरुद्ध है जैसा कहा जा चुका है। एक वेद मन्त्र में देवयान का क्रम इस प्रकार वर्णित है:—

सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीये आदित्यश्चतुर्थे
चन्द्रमा पञ्चम ऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे।

आत्मवेत्ता—यह कहा जा चुका है कि पहली गति-प्राप्त प्राणी मरने के बाद तत्काल जन्म ले लेते हैं और यही बात ठीक है। १२ दिन के बाद जन्म लेने की बात ठीक नहीं है।

मित्रो नवमे वरुणो दशम इन्द्र एकादशे विश्वे देवा द्वादशे ॥
(यजुर्वेद अध्याय ३९ मन्त्र ६)

यह मन्त्र तृतीय गति प्राप्त प्राणियों के मार्ग (देवयान) का क्रम बतलाता है। छान्दोग्योपनिषद् और इस वेद मन्त्र में वर्णित "देवयान" के क्रम प्रायः मिलते जुलते हैं, बहुत थोड़ा सा अन्तर है, जिससे किसी मौलिक सिद्धान्त में भेद नहीं आता। दोनों कथनों के तुलनार्थ दोनों स्थानों के मार्ग का विवरण यहां दिया जाता है:—

उपनिषदनुसार	वेदानुसार
१—आर्चिषी दशा	१—सविता
२—आह्निकी "	२—अहरग्निः
३—पाक्षी "	३—वायु
४—औत्तरायणी (षाण्मासिकी)	४—आदित्य
५—सांवत्सरी	५—चन्द्रमा+ऋतु
६—सौरी	६—मरुतः+बृहस्पतिः+मित्र.
७—चान्द्रमसी	७—वरुण
८—वैद्युती	८—इन्द्र
९—ब्रह्मलोक	९—विश्वेदेवा

सत्यवादी—क्या "देवयान" का कुछ सम्बन्ध सप्त-लोकों से है ? या "देवयान" इनसे कोई स्वतन्त्र मार्ग है ?

नोट—(१) सविता सूर्य और प्रकाश को कहते हैं, यहां भाव आर्चिषी दशा का है। (२) अहर्ग्निः अर्थात् अग्नि रूप दिन या दिन रूप अग्नि, किसी प्रकार समझ लिया जावे, अग्नि के अर्थ प्रकाश के हैं। भाव अहरग्नि का दिन का प्रकाश है और यह आन्हिकी अवस्था का पर्य्यायवाची ही है (३) वायु तीसरी पाक्षी दशा का भाव यह है कि जिसमें दिन की अपेक्षा प्रकाश अधिक है, वायवीय अवस्था में भी आन्हिकी दशा से अधिक प्रकाश होता है, वायु-सखा अग्नि को इसीलिए कहते भी हैं। (४) आदित्य महीने को कहते हैं इसलिए चौथी षाण्मासिकी दशा की जगह आदित्य का प्रयोग समानार्थक ही समझा जा सकता है। (५) चन्द्रमा के नाम से चन्द्र वर्ष सिद्ध ही है और प्रयोग में भी आता है, इसलिये चन्द्रमा का साम्वत्सरी स्थानी होना ठीक ही है। ऋतुवर्ष का भाग होने से वर्षान्तर्गत आ जाते हैं, इस लिये चन्द्रमा+ऋतु दोनों ५ वीं साम्वत्सरी अवस्था के लिये वेद में प्रयुक्त हैं। (६) मित्रः सूर्य्य को कहते हैं। वृहस्पति नाम सुत्रात्मा वायु का है और मरुत भी वायु ही को कहते हैं—इसलिये वृहस्पति और मरुत दोनों सुर्य्य से सम्बन्धित वायु होने से सूर्य्य के अन्तर्गत ही हैं। इसीलिये वेद में "मित्र वृहस्पति+मरुत' ये तीनों शब्द छठी सौरी दशा के लिये आये हैं। (७) वरुण जल वाची होने से चन्द्रमा से सम्बन्धित हैं,

आत्मवेत्ता—सप्त लोकों में से ६ लोक तो स्थान परक हैं, परन्तु "देवयान" के प्रथम की ८ संख्यायें केवल अवस्था-सूचक हैं। सात लोकों में से अन्तिम ब्रह्मलोक, जो सप्त व्याहृतियों में "सत्यम्" नाम से है, वही है, जो "देवयान" का निर्दिष्ट स्थान है और जिसको ब्रह्मलोक ही नाम उपनिषदों में भी दिया गया है।

इस लिये सातवीं चन्द्रमसी दशा के लिये वेद में वरुण शब्द प्रयुक्त है। (८) इन्द्र बिजली का नाम प्रसिद्ध ही है, इस लिये आठवीं वैद्युती अवस्था के लिये वेद मन्त्र में इन्द्र शब्द का आना उचित ही था। (९) "विश्वेदेवा,, समस्त दिव्य गुणों को कहते हैं और ये दिव्य (ऐश्वर्य) गुण जीवात्मा में शरीरों के समस्त बन्धनों के मुक्त होने ही पर आते हैं, इस लिये नवीं और अन्तिम दशा ब्रह्मलोक के लिये वेद में "विश्वेदेवा" शब्द प्रयुक्त हुये हैं। इस प्रकार देख लिया गया कि तीसरी गति प्राप्त "देव-यान" को यात्री जिन आठ दिशाओं में होकर अपने निर्दिष्ट स्थान ब्रह्मलोक में पहुँचते हैं। वेद में उन्हीं आठ दशाओं का वर्णन ग्यारह शब्दों में किया गया है जैसा कि ऊपर कहा गया है। उपनिषद का अन्तिम ध्येय ब्रह्मलोक जो ९ की संख्या पर आया है वही ध्येय वेद में बारवीं संख्या पर है, दोनों के भावों में कुछ भी अन्तर नहीं।

सत्प्रश्न—पहले यह बात कही गई है कि आत्मा का ब्रह्मलोक वास (मुक्ति) सदा के लिये नहीं है, किन्तु एक परान्तकाल तक के लिये है, तो फिर जीव वहां से लौट कर किस प्रकार जन्म लेते हैं ? क्योंकि जन्म लेने के लिये तो वासना का होना ज़रूरी है और मुक्त जीव के साथ वासना के होने की तो कथा ही क्या, वासना के रहने का स्थान चित्त भी नहीं होता ?

आत्मवेत्ता—यह ठीक है, गर्भ का दुःख भोग सकाम कर्म जन्य वासना का परिणाम है और मुक्त में अन्तःकरण नहीं रहते, इस लिये वासना तो फिर उस के साथ हो ही नहीं सकती, इस लिये मुक्त जीव मैथुनी सृष्टि में जन्म नहीं लेते किन्तु उनकी उत्पत्ति जगत् के प्रारंभ में अमैथुनी सृष्टि द्वारा होती है, जिसका वर्णन अगले संघ में किया जायगा। अब संघ का समय समाप्त हो चुका है ।

पांचवां परिच्छेद

सातवां संघ

अमैथुनी सृष्टि का व्याख्यान

संघ संघटित हो रहा था, इसी बीच में तपोवन

"संघ का प्रारम्भ" की अलौकिक छटा, सुन्दर सुहावने दृश्य और शान्तिप्रद शीतल वायु प्रवाह ने एक भक्त के हृदय को मग्न कर दिया। चन्द्रमा ने स्वच्छ नीले गगन मण्डल में प्रकाशित हो अपनी उज्ज्वल आभा का विस्तार करके उस भक्त के हृदय में उत्पन्न भक्ति प्रवाह को और भी वेग से प्रवाहित कर दिया और भक्त बेसुध-सा होकर प्रभु के यशगान में मग्न होगयाः—

भ्रमर वर गुंज मधुर हरि नाम।
शान्ति पुंज, भव भ्रान्ति भञ्जन कर, मोहन मञ्जु मदाम।
भ्रमर वर गुंज मधुर हरि नाम।
सुभग, सुबोल, सुगेय, सुगोचर, अमल, अमोल, ललाम।
सुखद, सुबोध, सुबुद्धि, प्रमोदित, ऋद्धि, सिद्धि, ध्रुव, धाम॥
भ्रमर वर गुंज मधुर हरि नाम।
सजग प्रेममय, त्रिजगत्क्षेममय, अननुमेय गुणधाम।
दुरित दोष दुर्वृत्ति, दुराग्रह, द्विविधा, द्वन्द्व विराम॥
भ्रमर वर गुंज मधुर हरि नाम।

भक्त का भावना पूर्ण गान सुन कर संघ में उपस्थित नर नारी प्रफुल्लित हो उठे और सभी के हृदयों में, क्षणिक ही क्यों न हों, प्रभु के प्रेम और भक्ति के भाव जागृत हो गये। जब संघ में इस प्रकार भक्ति का वायु

प्रवाहित हो रहा था, इसी बीच में सब का ध्यान, आत्म-वेत्ता ऋषि को आता देख कर, उस तरफ़ हो गया। ऋषि संघ द्वारा प्रदानित सम्मान पूर्वक, व्यास गद्दी पर आसीन हुये और नर नारियों को कथामृत पान का इच्छुक देख कर अपना व्याख्यान प्रारम्भ किया।

"अमैथुनी सृष्टि"

आत्मवेत्ता—जगत् की रचना ज्ञान पूर्वक है। जगत् के प्रारम्भ में जो मनुष्य और पशु पक्षी उत्पन्न होते हैं, उनकी उत्पत्ति का क्रम और है और उसी क्रम का नाम अमैथुनी सृष्टि की उत्पत्ति है। संसार की पहली नस्ल सदैव अमैथुनी होती है और उसके बाद की उत्पत्ति का नाम मैथुनी सृष्टि है मैथुनी सृष्टि वह है, जो माता और पिता के संयोग से उत्पन्न होती है और अमैथुनी सृष्टि वह है, जो बिना माता पिता के संयोग से उत्पन्न होती है। वह किस प्रकार उत्पन्न होती है, उसका क्रम क्या है, उसी का आज व्याख्यान करना है।

"प्राणियों की उत्पत्ति ४ प्रकार से"

समस्त प्राणी जो जगत् में उत्पन्न होते हैं, उनकी उत्पत्ति ४ प्रकार से होती है और इसी उत्पत्ति के क्रम से उनके नाम "जरायुज" जो झिल्ली से, "अंडज"

जो अंडे से, "स्वेदज" जो पसीने आदि से और "उद्भिज" जो पृथ्वी फोड़कर उत्पन्न होते हैं। इन में से अन्तिम दो की तो सदैव अमैथुनी सृष्टि होती है और प्रथम दो की अमैथुनी और मैथुनी दोनों प्रकार की सृष्टि हुआ करती है। अमैथुनी सृष्टि का क्रम इस प्रकार है:—

"अमैथुनी सृष्टि का क्रम"

स्थूल जगत् की उत्पत्ति का सूत्रपात आकाश (Ether) से होता है, इस के बाद क्रम से वायु, अग्नि, और पृथ्वी उत्पन्न होते हैं—पृथ्वी से औषधि, औषधि से अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से पुरुष उत्पन्न होता है।* यहां वीर्य से तात्पर्य रज और वीर्य दोनों से है, अर्थात् दोनों की उत्पत्ति अन्न से होती है। प्राणी, चाहे अमैथुनी सृष्टि हो, चाहे मैथुनी, दोनों मे, रज और वीर्य के मेल से ही उत्पन्न हुआ करता है। मैथुनी सृष्टि में रज और वीर्य के मिलने और गर्भ की स्थापना का स्थान माता का पेट

---

*देखो तैत्तिरीयोपनिषद् ब्रह्मानन्द वल्ली का प्रथम अनुवाकः—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः।
आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः
अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या औषधयः।
औषधीभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेतः। रेतसः पुरुषः॥

होता है, परन्तु अमैथुनी सृष्टि में इस मेल की जगह माता के पेट से बाहर होती है प्राणी शास्त्र के विद्वान् बतलाते हैं कि अब भी ऐसे जन्तु पाये जाते हैं जिनके रज और वीर्य माता के पेट से बाहर ही मिलते हैं और उन्हीं से बच्चे उत्पन्न होजाते हैं, उनके कुछेक उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

"ऐसे जन्तुओं के उदाहरण जिन में रज वीर्य का मेल बाहर होता है"

(१) समुद्रों में एक प्रकार की मछली होती है; जिनकी मादा मछलियों में नियत ऋतु में बहु संख्या में रज कण (Ova) प्रकट हो जाते हैं और इसी प्रकार नर मछली के अंडकोषों में जो पेट के नीचे (Within the abdominal cavity) होते हैं, वीर्य कण (Zoosperms)। जब मादामछली किसी जगह अंडे देने के लिये रज कणों को, जो हज़ारों की संख्या में होते हैं, जल की तह में जहाँ रेतली अथवा पथरीली भूमि होती है, गिराती है तो तत्काल नर मछली वहीं पहुँच कर उन्हीं रज कणों पर वीर्य कणों को छोड़ देता है, जिससे पेट के बाहर ही गर्भ की स्थापना होकर अंडे बनने का कार्य प्रारम्भ हो जाता है।

(२) दूसरा उदाहरण एक प्रकार के मेंढकों का है,

जो इसी प्रकार रज और वीर्य्य बाहर छोड़ते हैं। बाहर वीर्य्य कण छोड़ते समय नर मेंढक मादा मेंढक की पीठ पर इस प्रकार बैठ जाता है, जिससे मादा के छोड़ते हुए रज कणों पर वीर्य्य कण गिरते जावें और इस प्रकार से इनके भी पेट से बाहर ही अंडे बना करते हैं। जिन मेंढकों के अंडे मादा के पेट में बनते हैं, उनके लिए, प्राणी शास्त्र के विद्वानों का कथन है, कि वह प्रणाली अभी तक समझी नहीं गई है, कि किस प्रकार बिना जुफ़ती के, मादा के पेट में, अंडे बनने का कार्य्य होता है और किस प्रकार वहां वीर्य्य कण पहुँच जाते हैं।

(३) एक प्रकार का कीट जिसे "टेपवर्म" (Tape-worm) कहते हैं और जो मनुष्यों के भीतर पाचन क्रिया की नाली (Human digestive canal) में पाया जाता है, बीस हज़ार अंडे एक साथ देता है। एक अंडे में से जब कीट निकलता है, तो उसका एक मात्र सिर हुकों के साथ जुड़ा हुआ होता है (It consists simply a head with hooks) उन हुकों के द्वारा वह आँतों की श्लैष्मिक कला (Mucuous membrane of the intenstines) से जुड़ जाता है और उसी शिर से शरीर विकसित होता है, जो शीघ्र ही अनेक भागों (Segments) में विभक्त हो जाता है और वे क्रमशः

संख्या और आकार में बढ़ते जाते हैं। प्रत्येक भाग में पुरुष स्त्री के उत्पादक अंग (Sexual orgons) होते हैं—जिनसे स्वयमेव बिना किसी बाह्य सहायता के, गर्भ की स्थापना होती है और कुछ काल के बाद पुराने भाग (Segments) पृथक् २ हो कर स्वतन्त्र कीट हो जाते हैं।

(४) कुछेक मक्खियों में गर्भ—स्थापन कार्य्य (Sexulfunction) प्र.ण के द्वारा पूरे होते हैं।

(५) कुछेक खास तरह की चींटियां गर्भ स्थापना के समय कतिपय नर चींटियां से गर्भित होती हैं, नर चींटो तत्काल मर जाता है, मादा चींटो प्रत्येक नर के वीर्य्य कणों (Sperm) को सुरक्षित रखती हैं और फिर बिना किसी नर चींटो से मिलने के, कम से कम ११ वर्ष तक बराबर एक के बाद दूसरा अंडा देती रहती हैं।

इन उदाहरणों से यह बात अच्छी तरह समझी जा सकती है कि यह असंभव नहीं है कि रज और वीर्य्य का सम्मेलन माता के पेट से बाहर हो और उससे प्राणी की उत्पत्ति हो सके। इसी मर्यादा के अनुसार अमैथुनिक सृष्टि में रज और वीर्य्यका मेल माता के पेट से बाहर हो

कर एक झिल्ली* में सुरक्षित बढ़ता रहता है और जब प्राणी इस बाह्य गर्भ में इतना बड़ा हो जाता है कि अपनी रक्षा आप कर सके तब उस झिल्ली के फट जाने से प्राणी उत्पन्न हो जाते हैं, इसी का नाम "अमैथुनी सृष्टि द्वारा प्राणियों का युवावस्था में उत्पन्न होना है"। अमैथुनी सृष्टि का कार्य्य अच्छी तरह समझा जा सके कि किस प्रकार बिना प्राणियों के यत्न के रज और वीर्य्य का स्वयमेव सम्मेलन तथा प्राणी के पुष्ट और स्वयं कार्य्य करने के योग्य होने पर झिल्ली का फट जाना आदि कार्य्य अलौकिक रीति से हो जाया करते हैं। इसके लिये एक उदाहरण दिया जाता है:—

"एक कीट का उदाहरण"

सुदर्शन नाम की औषधि को प्रायः बहुत लोग जानते हैं। कानों के रोग की चिकित्सार्थ इसका अर्क कानों में डाला जाया करता है। जब इस औषधि के पत्तों में कीड़े लगने वाले होते हैं, तभी इसको ध्यान पूर्वक देखना चाहिये—ऐसा देखने से प्रकट होगा कि एक काले रंग की कोई वस्तु सुदर्शन के पत्ते पर कहीं से आकर पड़ती है, जो इस पत्ते को पकड़ लेता है। यह

* संस्कृत में इस झिल्ली को "उल्व" या "जरायु" कहते हैं और इसी झिल्ली से उत्पन्न होने से, मनुष्यादि प्राणी "जरायुज" कहलाते हैं।

वस्तु कहां से किस प्रकार आ जाती है, यह अभी तक ज्ञात नहीं हो सका। दो एक दिन वह वस्तु पत्ते पर बाहर रहती है उसके बाद, किसी अज्ञात विधि से, वह पत्ते के बीच अर्थात् पत्ते की झिल्ली और दल के बीच में आ जाती है। उस समय तक स्पष्टतया मालूम होता रहता है कि वही काली वस्तु जो पहले पत्ते के ऊपर थी अब पत्ते की दोनों पतली और मोटी तहों के बीच में आ गई है। कुछ दिनों के बाद वह इस प्रकार से पत्ते के बीच में आ जाती है कि अब वह बाहर से दिखाई तो देती नहीं परन्तु यह साफ़ मालूम पड़ता है कि पत्ते के बीच में कोई वस्तु मौजूद है। अब क्रमशः पत्ते के भीतर यह वस्तु लम्बाई में बढ़ती जाती है और लगभग दो इंच के लम्बी हो जाती है इसके बाद कुछ कार्य्य भीतर ही भीतर होता है और अन्त कई दिन के बाद वह पत्ता फट जाता है और उसमें से हरे रंग का एक लम्बा और गोल कीड़ा, जिसकी लम्बाई में दो सुनहरी रेखायें होती हैं, निकल आता है। इन सुनहरी रेखाओं (Segments) से कीड़े की लम्बाई तीन बराबर के भागों में विभक्त हो जाती है यह कीड़ा अब अच्छी तरह सुदर्शन की पत्तियाँ खाकर अपने को जीवित रखता है, परन्तु पौदे का नष्ट कर देता है।

अब इसी कीड़े को एक बक्स में, जिसके ऊपर "एक और परीक्षण" शीशा लगा था, रक्खा गया और उस के खाने के लिये सुदर्शन की पत्तियां रखदी गई। कई परिवर्तनों के बाद कुछ दिन गुज़रने पर कीड़े के तीनों भाग पृथक्-पृथक् तीन तितिलियों की शक्ल में हो जाते हैं। ऐसा होने पर जब बक्स खोला गया तो वह तितिलियाँ, बहुत सफ़ाई से बक्स खुलते ही, उड़ गई। यह परीक्षण, जिसे, जो कोई भी चाहे, कर सकता है, अमैथुनी सृष्टि की अनेक अलौकिक बातों पर प्रकाश डालता है कि किस प्रकार वह सब कार्य्य प्राकृतिक नियमों द्वारा होजाते हैं। यह अमैथुनी और मैथुनी सृष्टि का क्रम, ठीक वैज्ञानिक और उसी प्रकार से है जैसे खिलौने बनाने वाले, पहले एक साँचा बना लेते हैं और "सांचे का उदाहरण" उस के बाद उसी साँचे से अनेक खिलौने ढाल लिया करते हैं। अमैथुनी सृष्टि की प्रत्येक योनि साँचे के सदृश है और उसके बाद मैथुनी सृष्टि, उसी बने हुये साँचे से खिलौनों की भाँति है।

इस प्रकार देख लिया गया कि मुक्त जीव जो दुनियां में लौट कर उत्पन्न होते हैं, उन को माता के गर्भ में आकर गर्भ का कष्ट नहीं भोगना पड़ता; परन्तु उसके

बाद माता के गर्भ द्वारा उत्पत्ति के लिये वासना की अपेक्षा होती है। अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न होने के लिये वासना की कुछ भी आवश्यकता नहीं होती।

सत्यशील—मुक्ति की अवधि का प्रारम्भ तो उसी समय से होता होगा, जब से किसी की मुक्ति होती है। फिर कैसे आवश्यक है कि मुक्त जीव का जन्म सृष्टि के प्रारम्भ ही में हो यदि मुक्ति का समय सृष्टि के बीच में समाप्त होगा तो उसे उसी समय जन्म भी लेना पड़ेगा।

आत्मवेत्ता—मुक्ति की अवधि अहोरात्र (सृष्टि और महाप्रलय) की संख्याओं के हिसाब से नियत है, जिस अहोरात्र में मुक्ति होती है, चाहे वह किसी समय क्यों न हो, वह अहोरात्र की एक संख्या मानी जाती है। ऐसी अवस्था में सृष्टि के बीच में कभी मुक्ति की अवधि समाप्त नहीं हो सकती।

छठा परिच्छेद

मुक्ति का आनन्द

"आनन्द के भोग का प्रकार"

सूक्ष्मदर्शी—मुक्ति में जीव किसप्रकार आनन्द का उपभोग करते हैं ?

आत्मवेत्ता—जगत् में मुक्ति के आनन्द का उदाहरण

दिये जाने योग्य वस्तु "सुषुप्त" अवस्था है। "सुषुप्त" में जिस प्रकार मनुष्य शारीरिक बन्धनों से स्वतन्त्र-सा होता है और एक अकथनीय प्रसन्नता का अनुभव, बिना इन्द्रियों से काम लिये, आत्मा से किया करता है, उसी प्रकार का परन्तु उससे उच्च कोटि का आनन्द उसके आत्मानुभव में उस समय आया करता है, जब वह मोक्ष प्राप्त कर लिया करता है। "वह मुक्त जीव जिस जिस प्रदेश या वस्तु या और भी जिस प्रकार की कामना किया करता है, वे सब उसके संकल्प ही से प्राप्त हो जाते हैं। वह यदि कामना करता है कि "पितृ लोक"* को प्राप्त करे, तो संकल्पमात्र ही से उसे "पितृ लोक" प्राप्त होता है। वह यदि कामना करे कि "मातृ लोक",

---

* पितृ, मातृ, भ्रातृ, आदि लोकों की कामना का भाव यह नहीं है कि वह संसार में जिन माता पिता आदि को जन्म दाता या सम्बन्धी समझता था, उन्हें प्राप्त करे, क्योंकि वह अपनेपन (ममता) का भाव तो अब उसके पास ही नहीं है, बल्कि यों समझना चाहिये कि जब तक इसी भाव को नष्ट न कर देवे, तब तक कोई मुक्ति ही नहीं प्राप्त कर सकता। इन लोकों को प्राप्ति का भाव विश्व पितृ भाव (General father hood), विश्व मातृ भाव (General mother hood), विश्व भ्रातृ भाव (General brother hood) आदि से है।

"भ्रातृ लोक", "स्वसृ लोक" या "सखि (मित्र) लोक" को प्राप्त करे, तो संकल्प मात्र ही से ये सब उसे प्राप्त हो जाते हैं। वे यदि गन्ध, माला, अन्न पान, गति वादित्र आदि वस्तुओं के कामनावान् होते हैं, तो संकल्प करने ही से उन्हें ये सब प्राप्त हो जाते हैं।‡

इन अन्नादि वस्तुओं की क्या उस मुक्त जीव को, आवश्यकता होती है, ऐसी बात नहीं है। यह वर्णन केवल जीव के सामर्थ्य कथन के अभिप्राय से है अर्थात् मुक्त जीव स्वेच्छाचारी होता है, वह जीव की सीमा में रहते हुए जो चाहे कर सकता है, परन्तु इस प्रकार के कार्य्य वह करता नहीं है, क्योंकि इन से उसका कोई प्रयोजन नहीं रहता। यहा एक प्रश्नोत्तर उद्धृत किया जाता है, उससे इस पर अच्छा प्रकाश पड़ेगा।*

"एक प्रश्नोत्तर"

जनक—(याज्ञवल्क्य से) आप मुझे मोक्ष के सम्बन्ध में उपदेश देवें।

याज्ञवल्क्य—(अनेक शिक्षायें देने के बाद मुक्त जीव का कथन करते हैं) मुक्त जीव, मुक्तावस्था में, न देखता, न सूंघता, न चखता, न बोलता, न सुनता,

---

‡ देखो छान्दोग्योपनिषद् प्रपाठक ८ खण्ड २।

* बृहदारण्यकोपनिषद् अ० ४ ब्राह्मण ३ कंडिका १६ तथा २४ से ३१ तक।

न मनन करता, न स्पर्श करता, न (इन्द्रियों द्वारा) कुछ जानता है। ये सब इसलिये नहीं कि मुक्त जीव में ये शक्तियां या सामर्थ्य नहीं। उसमें यह सामर्थ्य सदा बना रहता है, क्योंकि जीव का सामर्थ्य नित्य और अविनाशी है, किन्तु वह जो देखता, सूंघता, चलता इत्यादि नहीं है, उसका कारण यह है कि मुक्ति में जीव को ये और इस प्रकार के अनेक प्रकार के सामर्थ्य प्राप्त रहते हैं, जिन से उस में यह योग्यता होती है, कि वह किसी वस्तु को अपने से भिन्न अर्थात् अप्राप्त नहीं समझता। जहां अपने से भिन्न (अप्राप्त) वस्तुएं हों, वहां अन्य अन्य को देखे, अन्य अन्य को सूंघे, अन्य अन्य का स्वाद लेवे, अन्य अन्य से सुने, अन्य अन्य का मनन करे, अन्य अन्य को छूवे, अन्य अन्य को जाने।

आत्मवेत्ता—याज्ञवल्क्य के उत्तर से स्पष्ट है कि जीव को मुक्ति में जीव के सभी संभव सामर्थ्य, प्राप्त रहते हैं, परन्तु वह उन्हें इस प्रकार के कार्य्यों में व्यय नहीं करता क्योंकि उसे इन सभी से बढ़ कर उच्च कोटि का आनन्द प्राप्त रहता है फिर वह इन तुच्छ विषयों की ओर कब ध्यान दे सकता है।

प्रेमरस—मुक्ति का आनन्द उच्चकोटि का बतलाया

"आनन्द मीमांसा" जाता है क्या आप कृपा करके कुछ ऐसा उपदेश करेंगे, जिससे उसकी उच्चता का कुछ अनुमान किया जा सके ?

आत्मवेत्ता—शास्त्रकारों ने मुक्ति के आनन्द के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डाला है, उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

तत्तिरोयोपनिषद् अनुसार (ब्रह्मानन्द वल्ली अनुवाक् ८)	शतपथ ब्राह्मण के अनुसार (देखो १४।७।१।३१)	बृहदारण्यकोपनिषद् (काण्वशाखा) के अनुसार (देखो ४।३।३२)
(१) मनुष्यों के १०० आनन्द मनुष्य गंधर्व के एक आनन्द के समान	मनुष्य के १०० आनन्द = पितर जित लोक का एक आनन्द	मनुष्यों के १०० आनन्द = पितर जित लोक के एक आनन्द के
(२) मनुष्य गंधर्वों के १०० आनन्द = देव गन्धर्व का एक आनन्द	——	——
(३) देव गन्धर्वों के १०० आनंद = पितर चिर लोक का एक आनन्द	——	——

(४) पितरों के १०० आनन्द=आजानज देव का एक आनन्द	पितर जित लोक के सौ आनंद=कर्म देव के एक आनन्द के	पितर जित लोक के १०० आनन्द गन्धर्व के एक आनन्द के
(५) आजानज देवों के १०० आनन्द=कर्म देवों के एक आनन्द के	——	गंधर्वों के १०० आनंद=कर्म देव के एक आनन्द के
(६) कर्म देवों के १०० आनन्द=देवों के एक आनन्द के	कर्म देवों के सौ आनंद=देवों के १ आनन्द के	कर्म देवों के १०० आनन्द=आजानज देव के १ आनन्द के
(७) देवों के १०० आनन्द=इन्द्र का १ आनन्द	देवों के १०० आनंद=गंधर्व के एक आनन्द के	——
(८) इन्द्र के १०० आनन्द=बृहस्पति का एक आनन्द	——	
(९) बृहस्पति के १०० आनन्द=प्रजापति का १	गन्धर्वों के १०० आनंद=प्रजापति के	आजानज देवों के १०० आनन्द=प्रजापति के एक

आनन्द (१०) प्रजाति के १०० आनन्द= ब्रह्म का १ आनन्द	१ आनन्द के प्रजापति के १०० आनंद =ब्रह्म के १ आनन्द के	आनन्द के प्रजा-पति के १०० आनन्द=ब्रह्म का १ आनन्द

इस विवरण में आये हुए आनन्द भोक्ताओं को ठीक २ समझा जा सके, इसलिये उनका कुछ विवरण यहां दिया जाता है—

(१) "मनुष्य"—जो व्यक्ति युवा, सच्चरित्र, वेदज्ञ, दृढ़ांग, शासक और बलवान् हो और जिसके आधीन धन धान्य से पूर्ण पृथ्वी भी हो, वह "आदर्श मनुष्य" समझे जाने योग्य होता है, ऐसे व्यक्ति को जो सुख प्राप्त होता है, उन सब सुखों की मात्रा का नाम "एक आनन्द" है।

(२) "मनुष्य गन्धर्व"—मनुष्य के साथ गन्धर्व*

* कहीं २ किसी लेखक ने गन्धर्वों का स्थान (गन्धर्व लोक) आकाश को लिखा है। प्रथम तो सभी प्राणी आकाश ही में रहते हैं, पृथ्वी भी, जिस पर मनुष्य रहते हैं, आकाश ही में गतिमान् है। इसके अतिरिक्त गन्धर्व नाम सूर्य्य की किरणों का भी है और गन्धर्वों के आकाश में रहने का भाव यह कि सूर्य्य की किरणें आकाश में रहती हैं।

विशेषण जोड़ने का भाव यह है, कि मनुष्यत्व के सं० १ में वर्णित आदर्श की पूर्ति के साथ मनुष्य में यह योग्यता और भी हो कि सामगान के द्वारा ईश्वरोपासना में मग्न रहता हो।

(३) "देव गंधर्व"—मनुष्यों के ३ भेद होते हैं:—निकृष्ट, मध्यम और उत्कृष्ट। उत्कृष्ट मनुष्य वे होते हैं जिन्होंने योगाभ्यास द्वारा दिव्य गुणों को प्राप्त किया हो। ऐसे ही पुरुषों का नाम "देव" होता है। 'मनुष्य' शब्द साधारणतया मध्यम श्रेणी के पुरुषों के लिये प्रयुक्त होता है। निकृष्ट पुरुष असुर, पिशाच और आदि शब्दों का वाच्य होता है। 'देव गन्धर्व' का भाव "उत्कृष्ट मनुष्य गन्धर्व" है।

(४) "चिर लोक पितर"—पितर (पितृ) शब्द के अर्थ रक्षक के हैं। जो लोग वेद विद्या, अपने परिवार, अपने देश और जाति की रक्षा में सदैव तत्पर रहते थे, उनका नाम वैदिक काल में "पितर" होता था। माता पिता के सिवा अन्य पुरुषों के लिये यह शब्द पदवी के तौर पर प्रयुक्त होता था। चिरलोक का विशेषण इसलिये लगाया गया है, कि चिरकाल तक पितृत्व की प्राप्ति समझी जावे। मृत्यु के बाद दूसरी गति प्राप्त करने वाले प्राणियों का नाम भी 'पितर' ही होता है।

वीरहरि—पितरों को देव गन्धर्वों से विशेषता क्यों दी गई है ?

आत्मवेत्ता—इस का कारण यह है, कि मनुष्य गन्धर्व और देव गन्धर्व सब कुछ अपने लिये ही करते हैं, परन्तु पितर अन्यों को रक्षा और सेवा करते हैं। जिसका नाम परोपकार है, इसी लिये उनका दरजा उन व्यक्तियों से, जो केवल अपने लिये ही जीते हैं, ऊंचा ठहराया गया है।

(५) आजानज देव—आजान नाम "देवलोक" अर्थात् ऐसे स्थानों का है, जहां देवों (उत्कृष्ट मनुष्यों) का निवास हो, ऐसे स्थानों से उत्पन्न होने वाले व्यक्ति "आजानज" कहलाते हैं। श्रेष्ठ पुरुषों, श्रेष्ठ परिवार आदि में उत्पन्न होना भी श्रेष्ठ कर्मों का ही फल होता है, इस लिये ऐसे पुरुष भी "देव कोटि" में ही रखे जाते हैं।

आनन्दपाल—यदि "आजानज" कहलाने वाले व्यक्ति अपने अनुरूप कर्म न करें, तो क्या वे तब भी "देव" ही समझे जावेंगे ?

आत्मवेत्ता—जिस व्यक्ति के उत्तम संस्कार हों और पैदा भी वह देवों के मध्य में हुआ हो, तो बहुत कम सम्भावना है कि उस के कर्म उसके अनुरूप न हों, क्योंकि

उत्तम संस्कार रहित प्राणी ही कुसंगति में पड़ कर बिगड़ा करते हैं, परन्तु कल्पना के तौर पर यदि मान लिया जावे कि उसके कर्म उसके अनुरूप न हों, तो वह "आजानज" देव ने कहला सकेगा। यह प्रकरण तो आनन्द की गणना का है। आनन्द की गणना में बुरे पुरुषों का समावेश असम्भव है।

(६) "कर्म देव"—जो अपने कर्मों से "देवत्व" प्राप्त करते हैं, उनको "कर्म देव" कहते हैं।

(७) "देव"—दिव्य गुण युक्त।

(८) "इन्द्र"—देवों का अगुवा या नेता

(६) "बृहस्पति"—देवों का उपदेष्टा या शिक्षक।

(१०) "प्रजापति"—देवों का सम्राट् (चक्रवर्ती राजा) इस विवरण से स्पष्ट है कि जगत् में सबसे ऊँचा आसन प्रजापति का है। और प्रजापति को जो सुख प्राप्त है, उन समस्त सुखों को प्रजापति का एक आनन्द कहते हैं। ऐसे आनन्द को सौ गुणा किया जावे, तो वह ब्रह्म के एक आनन्द के तुल्य होगा। इस प्रकार के असीम आनन्द ब्रह्म को प्राप्त हैं और उन्हों में से कुछेक आनन्द मुक्त जीव प्राप्त कर लेता है।

आनन्दानन्द—मुक्तजीव के आनन्द का जो उपयुक्त विवरण है, क्या यह विवरण प्रत्येक आनन्दों की नाप

तोल करके दिया गया है ?

आत्मवेत्ता—यह विवरण आनुमानिक और केवल मुक्ति के आनन्द की अद्वितीयता दिखलाने के वास्ते दिया गया है और विवरण से यह उद्देश्य अति उत्तमता से पूरा होता है। जगत् में सबसे बड़ा सुख प्रजापति का एक आनन्द है और प्रजापति के आनन्द के सौ गुने के बराबर जगत् में कोई आनन्द ही नहीं है और यह सौगुना आनन्द मुक्ति के आनन्द का दिग्दर्शन मात्र है—इसलिये मुक्ति के आनन्द की अद्वितीयता स्पष्ट है।

"मुक्ति के आनन्द की विशेषता का कारण"

प्रजाबन्धु—मुक्ति के इस आनन्द की विशेषता का कारण क्या है ?

आत्मवेत्ता—इसके दो कारण हैं।

(१) पहला और मुख्य कारण तो यह है, कि आत्मा को ओम् पद वाच्य सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार होता है जो निरावलम्बों का श्रेष्ठ अवलम्ब, निराश्रितों का उत्कृष्ट आश्रय, असहाय और दीनों का बन्धु और सखा, भक्तों का वत्सल है और जिसकी विलक्षण सत्ता का अनुमान भी नहीं किया जा सकता। क्या यह कम विलक्षणता है कि उसमें, माता का प्रेम, पिता का वात्सल्य, गुरु का स्नेह, सखा का सखित्व, बन्धु का बन्धुत्व, राजा की न्याय प्रियता, सहृदयों की

दयालुता आदि गुण जिनकी कोई संख्या नहीं और जो किसी प्रकार से भी गणना में नहीं आ सकते, एकत्रित हैं।

(२) दूसरा कारण यह है कि प्राणी अपनी अत्यन्त प्रिय वस्तु स्वतन्त्रता का, उस मात्रा में उपभोग करता है। जितनी या जिससे अधिक मात्रा में उसे वह और किसी प्रकार प्राप्त नहीं कर सकता।

उपमन्यु—प्राणी स्वतन्त्रता का तो, एक अंश तक जीवन काल में शरीर रखते हुए भी उपभोग करता है। तो इस और मोक्ष कीं स्वतन्त्रता में केवल मात्रा भेद ही कहा जा सकता है।

आत्मवेत्ता—केवल मात्रा भेद नहीं, किंतु श्रेणी भेद भी है, शरीर रखते हुए प्राणी जिस स्वतन्त्रता का उपभोग करता है, वह स्वतन्त्रता अर्द्ध-बन्दी की स्वतंत्रता के सदृश है। मनुष्येतर योनियां तो केवल भोग योनि होने से बन्दीगृह (जेलखाने) के सदृश हैं और उनमें जाने वाला प्राणी तो पूरा बन्दी ही होता है। परन्तु मनुष्य योनि में कर्तव्य और भोक्तव्य उभय-योनि होने से, मनुष्य को कर्म करने की स्वतन्त्रता प्राप्त होती है; परंतु फल भोग के समय तो मनुष्य योनि भी

जेलखाना ही होती है। इसीलिए मनुष्य-योनि में प्राप्त स्वतंत्रता अर्द्ध बन्दी की स्वतंत्रता कही जाती है। परन्तु मोक्ष में, जीव को किसी प्रकार के भी शरीर का बन्धन नहीं रहता, इसलिये वह पूर्ण स्वतंत्रता का उपभोग करता है। इसीलिए कहा जाता है, कि दोनों प्रकार की स्वतंत्रताओं में केवल मात्राभेद ही नहीं किन्तु श्रेणी का भेद भी है।

"संघ का अन्तिम दृश्य"

आत्मवेत्ता ऋषि के व्याख्यान और शंकाओं का समाधान करने के साथ ही संघ का समय भी समाप्त हो गया। संघ के समाप्त होने पर श्रोताजन प्रसन्न वदन प्रतीत होते थे। उन में जो साधारण स्थिति के पुरुष थे, उनको भी यह विश्वास हो चला था कि यदि योगी नहीं बन सकते और समाधि भी नहीं लगा सकते, तो भी ईश्वर का भरोसा दृढ़ता के साथ पकड़ लेने ही से उनका कल्याण हो सकता है, इसलिये उनके मुखड़े भी प्रफुल्लित थे। निदान संघ में उपस्थित नर नारी प्रसन्न थे और प्रत्येक के हृदय में यह भाव जागृत हो चुका था कि जिस प्रकार भी हो सके, अपने-अपने हृदय को ईश्वर प्रेम का मन्दिर बनाना चाहिये और इस भाव के जागृति होने से उनका दृष्टि कोण भी बदलने लगा।

अब उन्हें जगत् की प्रत्येक वस्तु में प्रभु की प्रतिभा की झलक दिखाई देने लगी थी। संघ के इस दृश्य ने संघ में उपस्थित एक भक्त के हृदय में निहित प्रेमाग्नि को धधका दिया और वह मग्न होकर गाने लगाः—

ग़ज़ल

चन्द्र मंडल में कोई देख ले आभा तेरी।
तेज सूरज का नहीं यह भी है छाया तेरी ॥ १ ॥
तेरी महिमा को प्रकट करती है रचना तेरी।
देख ले आके जगत् में कोई महिमा तेरी ॥ २ ॥
होंठ वे होंठ रहे जिन पे प्रशंसा तेरी।
मन वह मन है कि भरी जिसमें हो श्रद्धा तेरी ॥३॥
तेरी तकबीर* की देती है गवाही दुनियाँ।
तेरी हस्ती की शहादत में है रचना तेरी ॥ ४ ॥
ज़िक्र सौसन† की ज़ुबा पर है तेरी रहमत का।
सर्व इक पाँव से करता है तपस्या तेरी ॥ ५ ॥
गोशे नाज़ुक में गुलेतर‡ के छिपा भेद तेरा।

*तकबीर=महत्ता, बड़प्पन।

†सौसन एक फूल का नाम है, जिसे फ़ारसी कविता में ज़ुबान से उपमा दी जाया करती है।

‡ गुलाब के फूल में, फ़ारसी भाषा के कवियों ने, कान होने की कल्पना की है।

चश्मे नरगिस* में निहाँ सूरते ज़ेबा तेरी ॥ ६ ॥
हर तरफ़ खोज में फिरती है तेरे बादे सबा* ।
बुलबुलें बाग़ में करती हैं तमन्ना† तेरी ॥ ७ ॥
कामना कोई नहीं जिसकी हो इच्छा बाक़ी ।
दिल में इक तू है और इक मिलने की आशा तेरी ॥ ८ ॥
इक दृष्टि हो इधर भी कि इसी फल के लिये ।
जप रहा हूँ मैं बहुत देर से माला तेरी ॥ ६ ॥

दूसरी ग़ज़ल

मन यदि ठहरा तो चित्त है शांत ईश्वर प्रेम में ।
और हृदय बन गया है प्रेम मन्दिर प्रेम में ॥ १ ॥
नम्रता भावों में आई शील आया चित्त में ।
भर दिया है शांति ने मन को ईश्वर प्रेम में ॥२॥
आदमी तो क्या पशु पक्षी भी मोहित हो गये ।
कुछ अजब जादू भरा है चार अक्षर प्रेम में ॥३॥
हम हुये ब्रह्मांड के ब्रह्मांड अपना हो गया ।
और क्या दरकार है इससे भी बढ़ कर प्रेम में॥४॥
है यही इच्छा यही है आरज़ू ये दिल की मैं
देख लूँ इक बार तुमको आँख भर कर प्रेम में॥५॥

---

*नरगिस फूल विशेष का नाम है, जिसके पत्तों से आँख को उपमा दी जाया करती है ।

*बादेसबा=उत्तम वायु ।

†तमन्ना=इच्छा ।

सातवां परिच्छेद

आठवां संघ

अवस्थायें

जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति

जान्हवी तट पर सुन्दर सुरम्य तपोभूमि में संघ लगा हुआ है, अनेक नरनारी उपदेश ग्रहण करने के लिये एकत्रित हैं और सभी आत्मवेत्ता ऋषि की प्रतीक्षा में हैं। ठीक समय पर ऋषि को आता हुआ देख सभी नर नारी प्रफुल्लित हो गये और सम्मान पूर्वक ऋषि व्यास को गद्दी पर बिठलाया। ऋषि के आते ही संघ में शांति का वायु प्रवाहित होने लगा। संघ के नर नारी प्रतीक्षा में थे कि आज क्या उपदेश मिलेगा, कि इसी बीच में संघ की एक देवी ने खड़े हो इस प्रकार नम्रता से कथन कियाः—

सुभद्रा—सुषुप्ति को मोक्ष का उदाहरण पिछले संघ में बतलाया गया था—ये अवस्थायें क्या वस्तु हैं? इन में क्या भेद है? किस प्रकार मोक्ष का उदाहरण हैं? और इन अवस्थाओं का सम्बंध किस प्रकार लोक और परलोक से है? यह जानने की इच्छा संघ में उपस्थित अधिकतर नर नारियों की है। इसलिये आज इसी का उपदेश हो, तो इच्छा हो।

आत्मवेत्ता—बहुत अच्छा ! आज अवस्थाओं का ही व्याख्यान होगा। ३ अवस्थायें जगत्प्रसिद्ध हैं। १ (जागृत) २ (स्वप्न) ३ (सुषुप्ति) इनका सम्बन्ध शरीरों से है। "जागृत" का सम्बन्ध स्थूल शरीर से है; "स्वप्न" का सूक्ष्म शरीर से और "सुषुप्ति" का कारण शरीर से।

" अवस्थायें तीन हैं "

इन में से "जागृत अवस्था" वह जिस में स्थूल और सूक्ष्म शरीरों अर्थात् इन्द्रिय और मन दोनों का काम जारी रहता है। मनुष्य इस अवस्था में जगत् से साक्षात् सम्बंध रखता है। जगत् में देखने योग्य वस्तुओं को देखता, सुनने योग्य वस्तुओं को सुनता, इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय के व्यवहार को करता हुआ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध को ग्रहण करता रहता है।

जागृत अवस्था"

"स्वप्नावस्था" में स्थूल शरीर का कार्य्य बंद रहता है केवल सूक्ष्म शरीर काम करता रहता है। अर्थात् इंद्रिय व्यापार तो बंद रहता है, परंतु संकल्प विकल्पात्मक मन अपना काम जारी रखता है। इसी मन के व्यापार को स्वप्न(Dreams) कहते हैं।

"स्वाप्नावस्था"—

आनन्द प्रिय—ये "स्वप्न" क्या है ? क्या नई २ कल्पनायें स्वयमेव मन किया करता है ! या पिछले देखे, सुने के

"स्वप्न क्या है" स्मरण मात्र का नाम "स्वप्न" है ?
आत्मवेत्ता—एक जगह इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है, जो इस प्रकार है:—

"स्वप्नावस्था में मन अपनी महिमा का अनुभव करता है—जो देखा हुआ है, उसी को पुनः देखता है सुने हुए को पुनः सुनता है, भिन्न २ अवस्थाओं और स्थानों में जिन २ विषयों का अनुभव किया हुआ है, उन्हीं का बार २ अनुभव करता है।"

इतना उत्तर देने के बाद अंत में कहा गया है "कि दृष्ट, अदृष्ट, श्रुत, अश्रुत, अनुभूत, अननुभूत, सत्य, असत्य सभी को देखता है।"*

आनन्दघन—उत्तर के अंत में तो अदृष्ट, अश्रुत और अननुभूत विषयों के भी देखने, सुनने और अनुभव करने की बात कही गई है।

आत्मवेत्ता—यह बात कही जा चुकी है, कि मृत्यु स्थूल शरीर की होती है, सूक्ष्म शरीर आत्मा के साथ मृत्यु के समय स्थूल शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में चला जाया करता है। इस प्रकार जन्म जन्मान्तरों की देखी, सुनी और अनुभव की हुई बातें, स्मृति के रूप

* प्रश्नोपनिषद् ४।५।

में सूक्ष्म शरीर के एक अंग "चित्त" में जमा रहती हैं और जिस प्रकार इसी प्रचलित जन्म की बातें, जो स्मृति रुप में हैं प्रकरण आने पर स्मृति भंडार से निकल कर ताज़ी हो जाती हैं। इसी प्रकार जन्म जन्मान्तर की बातें भी, प्रकरण आने पर, उसी स्मृति भंडार से निकल आया करती हैं—इस जन्म में मनुष्य को जो आँख कान, नाक, आदि इन्द्रियां मिली हैं, उन्हीं के द्वारा जिन बातों को देखा और सुना है, उन्हीं को मनुष्य दृष्ट और श्रुत शब्दों से कहा करता है—परन्तु पिछले जन्मों की देखी और सुनी बात जो उन जन्मों में प्राप्त आंख कान के द्वारा देखी और सुनी गई थीं और जो अब स्मृति भंडार में जमा हैं, इस जन्म में प्राप्त आंख और कान की अपेक्षा तो अवश्य 'अदृष्ट' और 'अश्रुत' हैं और इसीलिए अब उन्हें मनुष्य अदृष्य और अश्रुत कहते हैं। परन्तु वास्तव में ये, न अदृष्ट हैं और न अश्रुत और न मन की कल्पना मात्रा ही हैं। निष्कर्ष यह है कि स्वप्न में मनुष्य जो कुछ भी देखा सुना या अनुभव किया करता है, वे सब उनकी देखी सुनी और अनुभव की हुई बातें ही होती हैं, चाहे वे इस जन्म की देखी सुनी और अनुभव की हुई हों, चाहे पिछले जन्म-जन्मान्तरों की—जब स्थूल, और सूक्ष्म दोनों शरीरों

का काम बंद होता है अर्थात् न इन्द्रिय काम करती हैं और न मन और समस्त वे काम जो इरादा करके किए जाते हैं, बंद रहते हैं तब इस अवस्था का नाम सुपुप्तावस्था हुआ करता है और यही वह अवस्था है, जिस में मनुष्य को पूरा आराम मिला करता है—इसीलिये इस अवस्था को मोक्ष का उदाहरण भी दिया करते हैं।

"सुषुप्तावस्था:"

इन अवस्थाओं के सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य और जनक सम्वाद प्रसिद्ध है और इस प्रकार है।

याज्ञवल्क्य—जीवात्मा के दो लोक होते हैं (१) इहलोक* (२) परलोक, परन्तु एक तीसरा लोक और भी होता है और वह है इन दोनों लोक परलोक की संधि अर्थात् "स्वप्न लोक" जीव इस संधि (स्वप्न) लोक से लोक और परलोक दोनों को देखा करता है, मर (इस जन्म से पहले) लोक में

"याज्ञवल्क्य और जनक सम्वाद"

---

* इहः लोक का तात्पर्य्य इस जगत् से है, जिसमें प्राणी निवास करता है और जिससे जागृतावस्था द्वारा उसका सम्बन्ध बना रहता है। परलोक का अभिप्राय इस जन्म से पहले और पीछे के जन्मों अथवा अवस्थाओं से है।

जीव का जैसा आक्रम‡ होता है, उसी आक्रम के आधार से जीव इस लोक में दुःख और सुख देखा करता है—उस समय (स्वप्नावस्था में) सर्व वासना युक्त इस लोक की एक मात्रा (वासना का एक अंश) को लेकर स्वयं उसे नष्ट करता, पुनः स्वयं उसे बनाता अर्थात् अपने प्रकाश और अपनी ही ज्योति से स्वप्न क्रीड़ा का आरम्भ करता है—उस अवस्था में उसके पास न रथ होता है न उसके घोड़े आदि, परन्तु वह इनकी (काल्पनिक) रचना कर लेता है—उसके पास आनन्द, मोद, प्रमोद भी नहीं होते, परन्तु वह इन्हें भी (अपने संकल्पों से) रच लेता है—यह जीव उच्च नीच विविध भावों को प्राप्त होता हुआ अनेक रूप उत्पन्न कर लिया करता है—कभी स्त्रियों के साथ सुखानुभव करता है, हँसता है, कभी तरह २ के भयों को देखता है।

जनक—इससे आगे की भी अवस्था का उपदेश करें।

याज्ञवल्क्य—जीवात्मा रमण और भ्रमण करता है, पुण्य और पाप को देखता हुआ आगे के सम्प्रसाद (सुषुप्तावस्था) में पहुँचता है और वहाँ से 'प्रति न्याय'

‡ आक्रम सीढ़ी को कहते हैं—परलोक के आक्रम का यह मतलब है कि जीव के जैसे ज्ञान, कर्म और वासनायें होती हैं, उन्हीं के अनुकूल उसे दुःख सुख भोगना पड़ता है।

द्वारा (जिस मार्ग से गया था, उसी मार्ग से लौट कर) प्रतियोनि (जिस स्वप्नावस्था से सुषुप्ति में गया था) उसी स्वप्नावस्था को लौटाता और इसी प्रकार स्वप्नावस्था से जागृतावस्था के लिये लौटता है– परन्तु इस स्वप्नावस्था में जो कुछ वह देखता उससे लिप्त नहीं होता।

जनक—इससे आगे सम्यग् ज्ञानके लिये उपदेश देवें।

याज्ञवल्क्य—जिस प्रकार महामत्स्य नदी के कभी एक किनारे की ओर जाता कभी दूसरे किनारे की ओर इसी प्रकार जीव स्वप्न और जागृत अवस्थाओं को प्राप्त होता रहता है जिस प्रकार पक्षी आकाश में इधर उधर उड़ कर जब थक जाते हैं, तब अपने२ घोंसलों की ओर दौड़ते हैं—इसी प्रकार जागृत और स्वप्न अवस्थाओं के कृत्यों से थका हुआ जीव सुषुप्ति के लिये दौड़ता है और वहां पहुँच कर सुखानुभाव करता है–उस (सुषुप्ति) अवस्था में पिता, अपिता, माता, अमाता, लोक, अलोक, देव, अदेव, वेद, अवेद, स्तेन (चोर) अस्तेन, भ्रूणघाती अभ्रूणघाती, श्रमण, अश्रमण, तापस अतापस होता है इस सुषुप्तावस्था में जीव पुण्य और पाप दोनों से असम्बद्ध रहता है और हृदय के समस्त शोक अशोकों के पार हो जाता है। *

सुखदेव—क्या यह ठीक है कि सोते हुए मनुष्य को

अचानक न जगावे, क्योंकि कहा जाता है कि इससे कुछ हानि होती है।

आत्मवेत्ता—एक मत यह है कि सोते हुए को सहसा जगाने से वह स्थान जहाँ मनुष्य की इच्छित शक्तियां काम नहीं करतीं, दुर्भिपज्य हो जाता है, परन्तु दूसरा मत यह है कि मनुष्य स्वप्न में सिंह आदि उन्हीं वस्तुओं को देखता है जिन्हें जागृतावस्था में देख चुका होता है और इस प्रकार जागृत और स्वप्न में कुछ भेद नहीं है और ऐसी हालत में उसे सहसा जगा देने से कुछ हानि नहीं होती—परन्तु श्रेष्ठ यही है कि घबराहट के साथ सहसा कभी किसी को नहीं जगाना चाहिए।

अवस्थाओं का विवरण जो आत्मवेत्ता ऋषि ने दिया और विशेष कर जो ज्ञान इस प्रकरण में याज्ञवल्क्य और जनक संवाद से हुआ, उससे संघ के सभी नर नारी प्रसन्न थे और अपने २ हृदयों में प्रत्येक यही भावना रखता हुआ प्रतीत हो रहा था कि अवस्थाओं के ज्ञान से शिक्षा लेकर यत्नवान होना चाहिये कि जागृत अवस्था को इतना श्रेष्ठ बनाया जावे; कि उसमें सुषुप्ति का आनन्द आने लगे—यही शिक्षा अवस्थाओं के वर्णन के अन्तर्गतनिहित थी और इसी आशा में प्रायः सभी मग्न हो रहे थे-संघ का कार्य समाप्त हो चुका था,

इस लिये आत्मवेत्ता ऋषि अपने निवास स्थान पर चले गए और प्रत्येक नर नारी गंभीरता का भाव हृदय में रखते, उपदेश की सराहना करते और संघ में आने से अपने जीवन को सफल समझते हुए संघ से अपने २ स्थानों को चले—संघ से जाने वालों की प्रसन्नता और भी बढ़ गई जब उन्होंने एक प्रेमी के मुँह से एक गाना सुना जिसे वह मग्न हो २ कर गा रहा था।

भजन

मैं उनके दरस की प्यासी ॥ टेक ॥
जिनका ऋषि मुनि ध्यान धरें नित, योगी योगाभ्यासी
जिनको कहत अमर अनोखी ।
आश्रय जिनके सदा त्रिलोकी ॥
जन्म मरण से रहित सदा शिव ।
काल मुक्त अविनाशी ॥ मैं उनके ॥
आविष्कर्ता अमर वेद का ।
लेश न जिस में भेद छेद का ॥
अचल अमूर्त अलौकिक अनुपम ।
परिभू घट घट वासी ॥ मैं उनके० ॥
अतुल राज्य है जिसका जग पर ।
सकल सृष्टि है जिसके अन्तर ॥

"अमीचन्द्र" जिस से होते हैं॥
रवि शशि अग्नि प्रकाशी॥ मैं उसके।

दूसरा भजन

मन पछतै है अवसर बीते।

दुर्लभ देह पाय प्रभु पद भज करम बचन अरु हीते॥
सहस बाहु दस बदन आदि नृप बचे न काल बली ते।
हम हम करि धन धाम सँवारे अन्त चले उठ रीते॥
सुत बनितादि जानि स्वारथ रत न कर नेह सब हीते।
अन्तहु तोहि तजेंगे पामर तू न तजै अब हीते॥
अब नाथहिं अनुराग जागु जड़ त्यागु दुराशा जीते।
बुझे न काम अगिनि "तुलसी" कहुँ विषय भोग बहु घी ते।
मन पछतै है अवसर बीते।

सभी लोग गम्भीरता के साथ "मन पछतै है अवसर बीते" इस कड़ी को बार २ कहते हुये आगे चले गये।

तीसरा अध्याय

पहला परिच्छेद

नवां संघ

रूहों का बुलाना

संघ का कार्य्य यद्यपि सन्ध्या काल व्यतीत होने

'प्रारम्भ'' पर प्रारम्भ हुआ करता है, परन्तु जिज्ञासुओं का जमघट बहुत पहले से ही होने लगता है—अभी सूर्य्य अस्त हुआ है, अभी उसकी अरुण आभा दिखाई ही देती है। सन्ध्या की छाया का धीरे २ निर्जन मैदान में उतरना प्रारम्भ ही हुआ है, अभी वह सायंकाल की नीरवता का विशेष सौन्दर्य्य बढ़ाने भी नहीं पाई है कि जिज्ञासुओं के हृदयों में चिन्ता रजनी घनीभूत हो उठी, कि संघ में चलने का समय आ गया—आज संघ में क्या सुनेंगे, उसी के सम्बन्ध में बहुदुर्दर्शिनी, बहुदुर्व्यापिनी अनेक कल्पनाओं से अन्तःकरण परिपूरित हो रहा है—हृदय प्रेम से परिप्लुत है। खिले हुये पंकज पुष्प ने मानो पुनः मुकुलित होकर कलिका का भाव धारण किया हुआ है—भीड़ की भीड़ आत्मवेत्ता ऋषि के आश्रम की ओर चली जा रही है—अनेक

दरिद्र हैं, किन्तु सन्तोषी हैं, अनेक अज्ञानी हैं, पर पाप से पराङ्मुख हैं, अनेक विपद्ग्रस्त हैं, पर तपस्वियों के समान धीर हैं—सभी यह सोचते हुये कि धर्मपथ सर्वदा निरापद निष्कंटक है, बढ़े हुए चले जा रहे हैं—देखते २ हो संघ-भूमि दर्शकों से परिपूरित हो गई, अब सभी टकटकी लगाये ऋषि के आने की बाट देख रहे हैं—ऋषि आकर संघ में उपस्थित हो गये, संघ में आये अनेक नवीन स्त्री, पुरुषों ने ऋषि को देखा, कि उन्नत ललाट है, समुज्ज्वल आभा से पूरित हैं और चेहरे की आकृति प्रकट कर रही है कि हृदय अलौकिक स्नेह सम्पन्न है-देखते ही हृदय श्रद्धा से भरपूर हो उठा और सभी उत्सुकता से ऋषि के मुंह की ओर देखने लगे कि क्या उपदेश करते हैं इसी बीच में एक जिज्ञासु ने नम्रता से कहाः—

सत्यकेतु—मरने के बाद आपने जिन तीन गतियों का वर्णन किया है, उन में दो तो—दूसरी और तीसरी—विशेष समुन्नत प्राणियों से संबन्धित हैं—पहली गति में आवश्यक रीति से प्रत्येक को पुनर्जन्म लेना पड़ता है, फिर जो रूहों के बुलाने की चर्चा आज कल देश और विदेश में चल रही है, यह क्या बात है ?—जब सब प्राणी जन्म ले लिया करते हैं, तब फिर ये रूहें कहां से और कैसे आती हैं ? आज इसी के सम्बन्ध में कुछ

उपदेश हो तो अच्छा होगा।

आत्मवेत्ता—बहुत अच्छा।

बसन्तीदेवी—पुनर्जन्म तो पहली गति प्राप्त प्राणियों के लिये ही आवश्यक बतलाया गया है—फिर यह क्यों सभव नहीं कि दूसरी या तीसरी गति प्राप्त प्राणियों की रूहें आती और अपना सन्देश देती हों ?

"रूहों के बुलाने का सम्बन्ध पहली गति प्राप्त प्राणियों से हैं"

सत्यकेतु—यह नहीं हो सकता—दूसरी और तीसरी गति प्राप्त प्राणी इतने ऊँचे और समुन्नत होते हैं कि उन से अपराध होना असंभव है, परन्तु रूहें जहां रहती हैं वहां ये अपराध भी करती हैं, दण्ड भी मिलता है, इन्हें जेल में भी जाना पड़ता है—सुनो एक रूह ने परलोक के दण्ड विधान की बात इस प्रकार वर्णन की है:—

"परलोक में जेल"

"मुझ को सजा मिली—मुझे हथकड़ी नहीं पहनाई गई थी—कारागृह में अन्धकार रहता है—भोजन देते हैं—गुरु ने मुझ को मारा पीटा नहीं किन्तु दूसरे लोगों ने मार पीट की—पहरे वाले पुरबिया जाति के थे—शासन दण्ड चमड़े के थे, और बेत की लकड़ी लाल रंग की थी—

कारागृह में धर्मशाला के समान तीन मंजिले मकान हैं। बाहर से वह इतना नयनाह्लादक दिखाई देता है कि जो देखेगा उसको भीतर जाने की इच्छा होगी। वह कई रंग से पुता हुआ है। एक के पीछे एक, इस तरह पांच पहरे हैं, हर एक पहरे पर दो आदमी हैं, अन्दर के और बाहर के पहरे वाले के पास घड़ी रहती है।

देवप्रिय—क्या वेस्टैंड वाच कम्पनी की घड़ियां थीं ?

नोट—इस प्रश्न पर सब हँस पड़े—और सत्यकेतु ने फिर इस प्रकार वर्णन करना शुरू किया:—

सत्यकेतु—"बिछाने को कम्बल, ओढ़ने को चद्दर, बनयान, टोपी और खद्दर की धोती देते हैं, बनियान काले रंग की और टोपी नीले रंग की होती है।* एक दूसरी रूह ने कहा कि "मुझे (जेल में) बन्द हुए तीन माह हो गये हैं"§ एक तीसरी रूह ने कहा कि परलोक में हमको स्वतंत्रता नहीं रहती गुरु को प्रसन्न रख कर हमको सब काम करने पड़ते हैं"‡ एक चौथी रूह ने बतलाया कि "हम यहाँ पर औषध आदि का सेवन

---

*बी० डी० ऋषि कृत सुभद्रा पृष्ठ ६५,६६।

§बी० डी० ऋषि कृत सुभद्रा पृष्ठ ६६।

‡ बी० डी० ऋषि कृत सुभद्रा पृष्ठ ६६।

नहीं करते, केवल गुरुमन्त्र व प्रसाद भभूति से रोग मिटते हैं—भभूति लगाकर मन्त्र नहीं पढ़ते हैं। इससे मस्तक शूल आदि जो जो व्यथायें होती हैं वे सब नष्ट हो जाती हैं। अपरिचित आत्मा कभी-कभी भविष्य कथन करते हैं, पर उनका यह कथन असत्य होता है"*

तर्कप्रिय—क्या योरुपियन लोगों की रूहें भी धोती पहनती हैं ?

नोट—सब लोग इस प्रश्न पर फिर हँस पड़े और सत्यकेतु ने फिर कहना शुरू किया:—

सत्यकेतु—जब परलोक में रूहें अपराध करती हैं—जेल में जाती हैं, तीन-तीन मास जेलों में रहती हैं, जब उन्हें वहां स्वतंत्रता नहीं होती, जब वे वहां बीमार होती हैं, जब वे वहां झूंठ बोलती हैं, तो फिर उस परलोक को किस प्रकार द्वितीय तृतीय गति प्राप्त प्राणियों का स्थान कह सकते हैं ?

आत्मवेत्ता—सत्यकेतु का कथन ठीक है- दूसरी और तीसरी गति प्राप्य प्राणियों की रूहों के बुलाने की बात कल्पनातीत है-रूहों के बुलाने के दावेदार पाप पुण्य मिश्रित प्राणियों के रूहों के बुलाने ही का कथन भी करते हैं-एक ऐसे ही रूहें बुलाने के दावेदार का कथन

* वी डी० ऋषि कृत सुभद्रा पृष्ठ ७२ ।

है, "परलोक में नियमोल्लंघन के लिये किस तरह की सजायें दी जाती हैं। इसका वर्णन कई आत्माओं ने किया है—कि इस लोक के दुराचार के लिये तथा परलोक में आज्ञा भंग के लिये जो शासन होता है, वह बहुत सख्त तथा निश्चित है।"S

इस कथन में रूहों की परलोक नाम की बस्ती में ऐसी रूहों का जाना स्वीकार किया गया है, जो दुराचारी थीं—इसलिये रूहों के बुलाने की संभावना विषय पर, पहली गति प्राप्त प्राणियों के साथ ही, विचार हो सकता है और इसी पर विचार किया जायगा—यह स्पष्ट है कि पहिली गति प्राप्त प्राणियों के लिये आवागमन अनिवार्य बतलाया जा चुका है और रूहों के बुलाने, उनके आने और संदेश देने की बात विचार कोटि में भी नहीं लाई जा सकती, जब तक यह स्वीकार न कर लिया जाय कि उनके लिये पुनर्जन्म अनिवार्य्य नहीं है।

"पुनर्जन्म प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है"

परन्तु पुनर्जन्म का होना अन्य प्रमाणों के सिवा प्रत्यक्ष प्रमाण से भी सिद्ध है—अनेक बालकों ने अपने पूर्व जन्म के हालात बतलाये हैं, जिनकी जांच

S बी० डी० ऋषिकृत सुभद्रा पृष्ठ ६५।

वैज्ञानिक रीति से की गई और उनका बतलाया हुआ हाल ठीक पाया गया। उनके कुछेक उदाहरण यहां दिये जाते हैं।

पहली घटना—कुंवर केकईनंदनसहाय B. A. L. L. B. वकील बरेली के एक पुत्र है, जिसका नाम जगदीशचंद्र है और जिसकी आयु ३।। वर्ष की है,* उसने अपने पहले जन्म का हाल इस प्रकार वर्णन किया—उसके पिता का नाम बबुआ पांडे और उसका घर बनारस था—उसने बनारस के मकान का हाल भी बतलाया और खास तौर से बड़े दरवाज़े, बैठक और तहखाने का ज़िक्र किया, जिसकी एक दीवार में लोहे की अलमारी लगी थी—उसने मकान के सेहन की बात भी बतलाई, जिसमें सायंकाल को बबुआ जी बैठा करते थे और जहां अन्यों के साथ वे भंग पिया करते थे, उसने यह भी कहा कि बबुआजी स्नान से पहले शरीर पर मिट्टी मला करते थे और एक फ़िटन और दो मोटरकार उनके थे—बबुआजी के दो लड़के थे और एक स्त्री थी और सब मर गये थे—इस वक्त बबुआ जी अकेले हैं— उसने अपनी माँ को चाची कहना बतलाया और कहा कि घर में जब और आदमी आया करते थे, तब वह लम्बा

*यह सम्वत १६८५ वै० की घटना है।

घूंघट काढ़ लिया करती थी, वही रोटी बनाती थी—इन सब बातों की तसदीक बनारस के प्रतिष्ठित सज्जनों द्वारा की गई और जगदीश को उसका पिता बनारस ले भी गया, जिसने वहां पहुंचकर वहां के जिलाधीश और पुलिस कप्तान तथा अन्य अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तियों के सम्मुख अपने पहले घर और बनारस के सम्बन्धियों को पहचान लिया और भी इस घटना की पुष्टि में बनारस की अनेक बातें बतलाईं।*

दूसरी घटना—एक बालक विश्नाथ की है—यह भी बरेली का है। इसका पहला जन्म पीलीभीत में हुआ था, इसने वहां के सब हालात बतलाये और उनकी भी उपर्युक्त भांति तसदीक हुई। †

और घटनायें—(३) हीराकुंवर बरेली–यह पहले जन्म में गोलक जिला मथुरा में थी जांच से इसका वर्णित हाल भी सही पाया गया।

(४) सुन्दर लाल हीरपुर जिला सीतापुर के

---

* देखो लीडर २७ जून, २५ जुलाई १६२६ तथा पैम्फिलेट Reincar Nation by Kr. Kaikai Nandan Sahai P. 1 to 8.

† देखो लीडर १२ तथा ३० अगस्त १६२६ तथा उपर्युक्त पैम्फिलेट पृष्ठ ६—१४

बतलाये, पहले जन्म के हालात को भी सही पाया गया।

(५) ब्रज चंद्रशरण मिरज़ापुर।

(६) बजरङ्ग बहादुर बरेली इसके भी बतलाये हुये हालात तसदीक़ किये गये और सही पाये गए।§

(७) सातवीं और बड़ी प्रसिद्ध घटना देहली नगर की कुमारी शान्ति देवी की है। यह कन्या श्रीयुत रंग-बहादुर देहली निवासी की पुत्री है।

कन्या जब से बोलने लगी तभी से इसने अपने पिछले जन्म के हालात बतलाने शुरू किये थे। उसने बतलाया कि वह पिछले जन्म में पं० चतुर्भुज मथुरा निवासी की पुत्री थी और उसका विवाह मथुरा ही में चौबे केदारनाथ के साथ हुआ था जो कपड़े की दूकान करते थे और भी बहुत से हालात बतलाये। इन हालात की तसदीक़ केदारनाथ आदि ने देहली आकर की— कन्या को, मथुरा का कितना ज्ञान है, इस बात की जांच के लिये निश्चय किया गया कि उसे मथुरा ले जाया जावे। २७ नवम्बर ३५ ई० को, यह नव वर्षीय कन्या १५, २० आदमियों की पार्टी के साथ, देहली से मथुरा, जी० आई० पी० की गाड़ी से रवाने हुई—इस

§ देखो उपर्युक्त पैम्फ़िलेट पृ० १५—२१।

पार्टी में ला० देशवंधु जी M. L. A. पंजाब डैरेक्टर तेज देहली, पं० नेकीराम शर्मा, बाबू ताराचन्द एडवोकेट देहली,और मिस्टर गुरु भी जो हाल ही में यौरूप और एमरीका की यात्रा करके आये थे, शामिल थे। यह लड़की इससे पहले इस जन्म में मथुरा कभी नहीं गई थी। गाड़ी जब मथुरा के करीब पहुँची तो लड़की ने बेसाख्ता कहना शुरू कर दिया कि मथुरा आगया, मथुरा आगया—प्लेटफार्म पर जब यह लड़की देशवंधु जी के गोद में थी तब एक व्यक्ति (लड़की के पूर्व जन्म का ज्येठ, बाबूलाल) आया और पूछा कि क्या तू मुझे पहचानती है ? लड़की ने ज्यों ही ध्यान पूर्वक उसे देखा, एक दम देशवंधु जी की गोद से उतर कर, उस व्यक्ति के पांव छूकर नमस्कार किया और स्वयं बतला दिया कि यह मेरे ज्येठ हैं। प्लेटफार्म से बाहर आकर यह पार्टी तांगों में सवार होकर स्टेशन से बाहर को चली—सब से आगे के तांगे में लड़की के साथ देशवंधु जी, पं० नेकीराम, मिस्टर गुरु और बाबू अमरनाथ वकील थे। तांगा लड़की के बतलाये हुए रास्ते पर चलता था। लड़की ने पहले ही से होली दरवाजे का हाल, घड़ी लगे होने के निशान से बतला दिया था। कई गलियों के रास्ते निकल जाने के बाद लड़की ने एक गली में

चलने को कहा जिसमें वह मथुरा में रहा करती थी। सब लोग तांगों से उतर कर उसी गली में चले। कुछ दूर जाने के बाद एक ७० वर्षीय वृद्ध व्यक्ति सामने आया—लड़की उसे देखते ही वकील साहब की गोद से उतर कर, उसके पांव छू कर कहा कि ये मेरे श्वसुर हैं। आगे चलकर उसने अपने रहने का मकान बतलाया। और ज़ीने से ऊपर जाकर अपने रहने के कमरे को बतलाया। ऊपर जाकर एक कोने में खड़े होकर बताया कि इस के नीचे कुआ है। पत्थर आदि के हटाने से कुआ दिखाई देने लगा। फिर एक जगह बतलाया कि यहाँ मेरे रुपये गड़े थे। खोदने से रुपये तो नहीं मिले परन्तु रुपये रखने का गल्ला जरूर निकल आया। केदार नाथ ने बतलाया कि रुपये उसने निकाल लिये थे। फिर उस गली से निकलकर आगे चलकर उसने द्वारका-धीश के मन्दिर और विश्राम घाट को पहचान लिया। केदारनाथ उसके पूर्व पति ने कुछ गुप्त बातें पूछ कर लड़की के उत्तर को ठीक बतलाया। लड़की ने पिछले जन्म के पिता चतुर्भुज और माता को भी पहचान लिया और उनसे लिपट कर खूब रोई। सभी को निश्चय हो गया कि लड़की पिछले जन्म में चतुर्भुज की पुत्री और केदारनाथ की पत्नी थी।

इन घटनाओं से स्पष्ट है कि पहिली गति सब प्राणियों की पुनर्जन्म ही है--जब मरने के बाद प्राणियों का जन्म हो जाता, तो फिर परलोक नाम से किसी स्थान विशेष की कल्पना और यह भी कल्पना कि उस कल्पित स्थान पर मरे हुए प्राणियों की रूहों का स्टाक रहता है और उसी स्टाक में से, निमित्त पुरुष (medium) के द्वारा, किसी रूह को बुला लेने की कल्पना, कल्पना मात्र है।

ऋषि कुमार--यदि रूहों के बुलाने के और उनके सन्देश देने की बात कल्पना मात्र और निस्सार है तो अनेक नर नारी रूहों के बुलाने की बात कहा करते हैं, क्या ये सब मिथ्यावादी और झूठे हैं? इन रूहों के बुलाने का अमल करने वालों में अनेक वैज्ञानिक हैं, अनेक शिक्षित और विश्वस्त पुरुष हुआ करते हैं, क्या ये सब जान बूझकर झूठ बोला करते हैं?

आत्मवेत्ता--यह नहीं कहा जा सकता कि रूह के बुलाने का दावा करने वालों में सबके सब झूठे और चालाक पुरुष ही हुआ करते हैं--कुछ सच्चे भी हुआ करते हैं। परन्तु कुछ चालाक, झूठे और पेशेवर भी हुआ करते हैं--हम दोनों प्रकार के नर नारियों का यहां उल्लेख करते हैं--जो लोग सच्चे हैं और नेकनीयती से

अमल करते हैं उनसे भूल यह हुआ करती है कि वे मानवी शक्तियों का पूर्ण ज्ञान न रखते हुए और ईश्वर प्रदत्त अलौकिकता से, जो उनके मस्तिष्क और चित्त में निहित होती है, अपरिचित रहते हुए जो काम स्वयं उनकी शक्तियों से हुआ करता है, उसे किसी बाह्य साधन से हुआ समझ लिया करते हैं—और इसी भ्रम में पड़कर रूहों के बुलाने आदि का विश्वास कर बैठा करते हैं—इस बात का ज़िक्र हम कुछ विस्तार से करते हैं, जिससे संघ के नर नारी अच्छी तरह से जो बात सच है, उसे जान सकें—

"परोक्ष ज्ञान किस प्रकार हुआ करता है ?"

रूह के बुलाने आदि का विषय परोक्ष ज्ञान से संबंधित है, इसलिए परोक्षज्ञान किस प्रकार हुआ करता है, पहले इसी बात पर विचार करना चाहिए—परोक्षज्ञान योग की एक विभूति है—पश्चिमी अध्यात्मवाद की परिभाषा में इस विद्या को 'परोक्षदर्शन' (clair voyance clear Seeing intuition, or second sight) कहते हैं—प्रत्यक्ष का ज्ञान हमको चक्षु आदि इन्द्रियों के द्वारा हुआ करता है। परन्तु परोक्ष का ज्ञान, समझा जाता है कि इन्द्रियों के द्वारा नहीं हो सकता यह विचार एक दरजे तक ठीक है,

परन्तु शक्तियों के विकसित हो जाने पर मस्तिष्क की शक्तियां भी जिनसे इंद्रियों के द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाया करता है और जिन शक्तियों को उचित रीति से सूक्ष्म या असली इंद्रियाँ भी कहा जाता है, विकसित हो जाती हैं और उनसे परोक्ष का ज्ञान भी प्राप्त हो जाया करता है—हम जिनको, देखना सुनना आदि कहा करते हैं, इनकी असलियत पर विचार करने से पता लगता है कि ये तरतीब के साथ नियत संख्या में आकाश में उठे हुए कम्पनों के प्रभाव के सिवा और कुछ नहीं है—उदाहरण के लिये श्रोत्रेन्द्रिय पर विचार कीजिये —इस इन्द्रिय के द्वारा हम वायु में उठी हुई तरंगों की एक लड़ी को ग्रहण किया करते हैं, जो मस्तिष्क में पहुंच कर क्षोभ उत्पन्न करती है और उसी क्षोभ (Disturbance) को हम शब्द या ध्वनि कहा करते हैं—इसी प्रकार चक्षु इन्द्रिय पर विचार कीजिए इस इन्द्रिय के द्वारा हम आकाश (Ether) में वेगपूर्वक उठी हुई नियमित तरंगों को ग्रहण करते हैं और उन्हीं तरंगों के ग्रहण करने मात्र से हम प्रकाश का अनुभव करते हैं—* इसी प्रकार स्पर्श, स्वाद और सूंघना भी इन्हीं

तरंगों का विवरण — *वैज्ञानिकों ने अनुमान किया है कि जब आकाश (ईथर) में ४० नील तरंगें उठती हैं, तो मनुष्य लाल रंग देखा करता है और जब ८०

तरंगों के भिन्न २ मात्रा में उठने और उन के उन २ इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करने के परिणाम हैं–निकट वर्त्ती का ग्रहण करना प्रत्यक्ष और दूरवर्ती तरंगों का ग्रहण करना परोक्ष कहलाता है यह बात अनुभव सिद्ध है कि शब्द, स्पर्श, रूपादि के रूप में परिवर्तित होने वाली आकाशादि के उन तरंगों के ग्रहण करने की योग्यता न केवल भिन्न २ पुरुषों में भिन्न २ प्रकार की होती है, किन्तु एक ही पुरुष में एक समय एक प्रकार की होती है और दूसरे समय में दूसरे प्रकार की, एक पुरुष बहुत समीप की वस्तुओं को देख और बहुत समीप के शब्दों को ही सुन सकता है—परन्तु दूसरा पुरुष उससे कहीं अधिक दूर की वस्तुओं या ध्वनि को देख या सुन सकता है, यह अन्तर क्यों होता है ? इस प्रश्न का उत्तर यही दिया जा सकता है कि दूसरे पुरुष की ग्राहक शक्ति पहले की अपेक्षा अधिक हैं—यह अधिकता क्यों है ? इसका कारण और एक मात्र कारण, उसके अभ्यास आदि कर्मों की पहले की अपेक्षा उत्कृष्टता है—अच्छा यदि किसी तीसरे व्यक्ति के अभ्यास आदि कर्म इस दूसरे पुरुष की अपेक्षा और भी अधिक श्रेष्ठ हों, तो

नील तरंगें उठती हैं, तब बैंजनी ,४० और ८० नील के बीच में उठती हुई तरंगों से, बाकी रंग देखे जाया करते हैं।

क्या वह इससे भी अधिक दूर की वस्तुओं या शब्दों को देख या सुन सकेगा ? अवश्य देख या सुन सकेगा—यह दूरी जब साधारण मानवी बुद्धि की अपेक्षा से, कुछ अधिक बढ़जाती है, जिसे सर्व साधारण परोक्ष कहने लगते हैं, तो फिर उसी दूरी का, दर्शन या श्रवण द्वारा, ज्ञान प्राप्त कर लेना, "परोक्ष ज्ञान" कहलाता है ।

मनुष्य अल्पशक्ति है वह बहुत सी अवस्थाओं में एक विशेष सीमा तक ही, प्रकाशादि की तरंगों को ग्रहण कर सकता है—उससे अधिक नहीं- जेम्स ने अपने "मनोविज्ञान" में इस बात को बहुत अच्छी तरह से बतलाने का यत्न किया है ।* परन्तु इसके विरुद्ध

*"There is no reason to suppose that the order of vibrations in the out-world is anything like as interupted as the order of sensations. Between the quickest audible air waves (40,000 vibrations a second at the outside) and the lowest sensible heat-waves (which number probably billions) nature must somewhere have realised in numberable intermediary rates which we have no means for perceiving." (Psychology by Prof. Jamess.)

बहुत सी अवस्थाओं में शक्ति के विकसित होने पर मनुष्य अधिक दूर की तरंगों को भी ग्रहण कर सकता है।

"मस्तिष्क से रंगीन किरणों का निकास"

बिना पूछे गये एक सीमा तक मनुष्य के भीतरी भावों का पता लगाना भी परोक्ष दर्शन की सीमा के अन्तर्गत है—योग की विभूतियों में परोक्ष दर्शन सम्मिलित है—मनुष्य के मस्तिष्क से, जो उसके भावों और विचारों का केन्द्र होता है, रंगीन किरणें निकला करती हैं, जिन्हें, शक्ति विकसित किए बिना, कोई नहीं जान सकता—इन किरणों का कुछ विवरण यहाँ दिया जाता है:—

(क) जो मनुष्य अत्यन्त आवेश वाले (Passionate) होते हैं, उनके मस्तिष्क से निकलने वाली किरणें गहरे लाल रंग की होती हैं।

(ख) परोपकारी पुरुषों की किरणें गुलाबी रंग की होती हैं।

(ग) यश की कामना वाले पुरुषों की किरणें नारंगी रंग की होती हैं।

(घ) गहरे विचारकों की किरणें गहरी नीली रंगत वाली हुआ करती हैं।

(च) कला प्रेमियों की किरणें पीली।

(छ) उद्विग्न और उदास पुरुषों की किरणें धवल (Gray)।

(ज) नीच प्रकृति वालों की किरणें मैली, बादामी।

(झ) भक्ति और सदुद्देश वाले पुरुषों की हलकी नीली।

(त) उन्नति शील पुरुषों की हलकी, हरी।

(थ) शारीरिक और मानसिक रोगियों की गहरी हरी होती हैं। इत्यादि इत्यादि।

इन किरणों के देखने का अभ्यास करने पर कोई पुरुष मानवी हृदयों का पाठ करने की योग्यता प्राप्त कर सकता है।

इंगलैंड के एक डाक्टर स्टेनसन हूकर (Dr. Stenson Hooker) ने जो विद्युत प्रकाश और रंग चिकित्सा के विशेषज्ञः हैं, इसका बहुत-सा विवरण दिया है।(१) इस प्रकार चेहरे को देखकर ज्ञान प्राप्त कर लेना आकृति विद्या (Science of facial Experessions) कहलाता है—अनेक वैद्य होते हैं जो केवल चेहरेको देखकर ही रोग का सब वृत्तान्त जान लिया करते हैं। रोग का वृत्तान्त वे न रोगीसे पूछते हैं और न नाड़ी आदि देखा करते हैं।(२)

(१) Clairvoyance by R. O. Stockes P. 164.

(२) अनूपशहर के पं० गोपाल वल्लभ और उन के पुत्र पं० भोला वल्लभ वैद्य इसी प्रकार के वैद्य थे—केवल आकृति (मुख

प्रियव्रत—यदि परोक्ष ज्ञान प्रत्यक्ष के सदृश ही होता है जैसा आपने उपदेश किया है, तो उसमें मत भेद नहीं होना चाहिये, परन्तु परोक्ष ज्ञान की अवस्था यह है कि जितने परोक्ष ज्ञान बतलाने के दावेदार हैं, उन सब की अलग-अलग डफली और अलग २ राग हुआ करता है। इसका कारण क्या है ?

आत्मवेत्ता—जैसा कि कहा जा चुका है, इसके दो कारण हैं एक तो परोक्ष बतलाने का दावा करने वालों में अभ्यास और ज्ञान की कमी, दूसरे छल कपट, जिसका कुछ विवरण आगे दिया जायगा—इस समय रूहों के बुलानें आदि का प्रकरण पश्चिम से चला है, इसलिये पहले इस बात को देखा जायगा कि वहां यह प्रकरण कैसे चला ?

पश्चिमी आध्यात्मवाद का जन्म मैसमर* से हुआ

नेत्रादि) देखकर ही चिकित्सा करते थे—उनकी इस प्रकार की चिकित्सा का हाल अनूपशहर में प्रसिद्ध है।

* मैस्मर (mesmer) जरमन का एक डाक्टर था, जिसने सन् १७७८ ई० में एक सिद्धान्त निकाला कि एक मनुष्य अपनी शक्ति से एक दूसरे व्यक्ति की इच्छा शक्ति और तन्तुजाल (Nervous system) को प्रभावित कर सकता है—मैसमर का यह वाद मेस्मरइज्म (Mesmerism or Mesmer's theory of fluidic emanatoins or animal magnetism) के नाम से प्रसिद्ध है।

"परोक्ष सिद्धान्तों में मत भेद" समझा है—परन्तु उसी समय से जितने भी सिद्धान्त इस (आध्यात्मवाद) से सम्बन्धित बने, उनमें सदैव ज्ञान की कमी से परस्पर विरोध रहा और वे कभी ऐसे नहीं हुए कि संदिग्ध दृष्टि से न देखे जाते रहे हों—मनुष्य की अल्पज्ञता की वजह से आम तौर से उन सिद्धान्तों में जो परोक्ष कहे जाते हैं, मतभेद रहा ही करता है उदाहरण के लिये जान बोवी डाड (John bovee dad) के वैद्युति सिद्धान्त (electrical theory) को देखें, जिसमें धनात्मक फुफ्फुस और ऋणात्मक रक्त (Positive Lungs and negative blood) पर विचार हुआ है, तो प्रतीत होता है कि जब इस वाद का प्रचार हुआ तो अनेक स्त्री पुरुष मानने लगे और प्रत्येक प्रकार से उसका समर्थन करने लगे थे, यही हाल "ब्रेड" (Braid) के सिद्धान्त का था, जिसके रू से उसने यह साबित करने का यत्न किया था कि मनुष्य में कोई वस्तु ऐसी नहीं है, जिसकी तोल न हो सकती हो—इसका भी बड़ा मान हुआ परन्तु इन सिद्धान्तों की आयु अधिक नहीं हुई, थोड़े ही अरसे के बाद अपने २ आविष्कर्ताओं के नाम काग़ज़ के पृष्ठों पर छोड़कर सदा के लिये क्रियात्मक जगत् से ये सिद्धान्त विलीन हो गए।

इस जमाने में अनेक मनुष्य मेस्मर के सिद्धान्त को

"मेस्मरइज्म एक रोग है"

तन्तुजालिक रोग* समझते हैं और कहते हैं कि उस को जो कुछ भी प्रभाव होता या हो सकता है, उसकी व्याख्या शरीर विद्या (Physiology) से की जा सकती है—"मेस्मरइज्म" रोग हो या न हो, परन्तु यह और इस प्रकार के अनेक वाद सुगमता से समझे जा सकते हैं। यदि मनुष्य अपनी शक्तियों को भली भांति समझ लेवे। अपनी शक्ति के अज्ञान से मनुष्य से जो काम स्वयं होता है, उन्हें वह भूत, प्रेत या बुलाई हुई कल्पित रूहों का किया हुआ समझ लिया करता है।

सोमदेव—वे शक्तियां कौनसी हैं, जिन्हें मनुष्य नहीं जानता और जिनके न जानने से भ्रम में पड़ जाया करता है?

आत्मवेत्ता—शक्तियों के कोष मनुष्य के अन्तःकरणों में निहित रहते हैं, उन्हीं के न जानने से मनुष्य भ्रम में पड़ जाया करता है, उनका विवरण इस प्रकार है—

अन्तःकरण और उन के नाम

अन्तःकरण चार होते हैं और इसीलिए अन्तःकरणों को, अन्तःकरणचतुष्टय

* The law of Psychic, phenomena by T. J. Hudson P. 22 (introduction)

भी, कहते हैं वे चार अन्तःकरण ये हैं (१) मन (२) बुद्धि (३) चित्त और (४) अहंकार। इनके कार्यों का विवरण इस प्रकार है:—

'मनका काम' मन को इन्द्रियों का राजा कहते हैं— उसका काम इन्द्रियों से काम लेना है। दशों ज्ञान और कर्म इन्द्रियाँ उसके अधीन रहती हैं।

"बुद्धि का काम" बुद्धि का काम तर्क है—तर्क से सत्यासत्य का निर्णय करना बुद्धि का काम है।

"चित्त का काम" चित्त के तीन कार्य हैं (१) स्मृति रूपमें ग्रहण की हुई बातों को अपने अधिकार में रखना-यहाँ पर यह ध्यान में रखना चाहिए कि स्मृति ३ सूरतों में चित्त में रहा करती है-उसकी पहली सूरत मामूली स्मृति (किसी) विषय का याद रखना-(Memory) है। दूसरी सूरत संस्कार (Impressions) है, मनुष्य के ऊपर अपने कृत्यों से तथा संसार में घटित अनेक घटनाओं से जो प्रभाव पड़ा करते हैं उन्हीं का नाम संस्कार है—तीसरी सूरत कर्मजन्य वासना है, जिसका पहले व्याख्यान हो चुका है—स्मृति इन तीनों सूरतों में चित्त के भीतर रहा करती है, और वह न केवल प्रचलित जन्म ही का संग्रह होती है, किन्तु जन्मजन्मान्तरों में प्राप्त और संगृहीत हुआ करती है।

(२) चित्त वृत्ति को समीप या दूर भेज कर विषयों का ग्रहण करना।

(३) चित्त क्षोभ (Emotion)

अहंकार का कार्य यह है कि इसके आने से मनुष्य में "अहंकार का काम" ममता की उत्पत्ति होती है अर्थात् उस में अपने-पन के भावों की जागृति होती है।

रमेश—पश्चिमी शरीर शास्त्र में इन अन्तःकरणों का वर्णन इस प्रकार का नहीं देखा जाता।

आत्मवेत्ता—यह ठीक है—पश्चिमी शरीर विद्या(Physiology) बहुत अधूरी है। उसमें केवल स्थूल शरीर का वर्णन है—सूक्ष्म और कारण शरीरों को वह नहीं जानती। हां पश्चिमी मनोविज्ञान (Psychology) में कुछ वर्णन अन्तःकरणों का है परन्तु जहाँ चित्त(mind) के कार्यों की बात आती है—तो उसे वह (मनो विज्ञान) भी अलौकिक (mystery) कह कर टाल दिया करता है—अवश्य अब पश्चिम के कुछेक विद्वानों ने अन्तःकरणों के समझने का यत्न किया है—एक विद्वान ने बतलाया है कि मस्तिष्क दो प्रकार का है* एक का नाम है तार्किक (Objective mind) दूसरे का नाम है चैत्तिक मस्तिष्क

---

* The law of psychic phenomena by Hudson p. 29 and 30.

(Subjective mind) उसने दोनों के कार्य्यों का विवरण इस प्रकार दिया है:—

"तार्किक मस्तिष्क के कार्य्य"

इस मस्तिष्क का कार्य्यक्षेत्र बाह्य जगत् होता है—और कार्य्य के साधन पंच ज्ञानेन्द्रियां हुआ करती हैं, मनुष्य की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिये इस मस्तिष्क की सृष्टि हुई है और इसीलिये यह अपने प्राकृतिक साधनों से इस मामले में मनुष्य का पथ प्रदर्शन किया करता है—इसका सबसे बड़ा काम तर्क के द्वारा बाह्य उलझनों का सुलझाना है—अन्तःकरण चतुष्टय में से मन और बुद्धि दोनों के स्थान में इस मस्तिष्क की कल्पना पश्चिमी मनो विज्ञान में की गई है—शरीर शास्त्र में इसी को मुख्य मस्तिष्क (Cerebrum) कहते हैं।

"चैत्तिक मस्तिष्क के कार्य्य"

यह मस्तिष्क अपने कार्य्य क्षेत्र में, इन्द्रियेतर साधनों से कार्य्य करता है—इन्द्रियों से इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता, इसके कार्य्य (ज्ञान प्राप्ति) का साधन अन्तर्मुखवृत्ति (Intuition) है—यह चित्त (Emotions) क्षोभ और स्मृति का भंडार है, यह मस्तिष्क अपने उच्च और महान् कार्यों को उस समय

किया करता है, जब तार्किक मस्तिष्क का कार्य्य बन्द हुआ करता है—स्वप्न अथवा मूर्छित अवस्था में वह मूर्छा चाहे मेस्मरइज़्म द्वारा उत्पन्न की गई हो अथवा अन्य किन्हीं कारणों से, यह मस्तिष्क अपने को अच्छी तरह से व्यक्त किया करता है—और उसी अवस्था में इस के कार्य्य आश्चर्य जनक हुआ करते हैं। वह विना आँख खोले देखता है, अपनी (चित्त) वृत्तियों को दूर २ भेजकर वहाँ का प्रायः यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लिया करता है—दूसरों के हृदयों की जानकारी भी प्राप्त कर लिया करता है—परोक्ष का ज्ञान प्राप्त कर लेना इसके लिये वैसा ही सुगम है, जैसा तार्किक मस्तिष्क के लिये प्रत्यक्ष का–इसी का नाम परोक्ष दर्शन (Clairvoyance) है—

"दोनों मस्तिष्कों का अन्तर"

दोनों मस्तिष्कों का स्पष्ट अन्तर समझ लेने ही से मनुष्य उनके कार्य्यों की सीमा को ध्यान में रख सक्ता है, इस लिये उनका अन्तर समझ लेना चाहिये–तार्किक मस्तिष्क का काम शारीरिक है और शरीर से बाहर हुआ करता है और उसके कार्य्यक्षेत्र की सीमा इन्द्रियों की सीमा से सीमित है—परन्तु इसके सर्वथा विपरीत चैत्तिक मस्तिष्क स्थूल शरीर से भिन्न एक पृथक स्वतन्त्र सत्ता है और उसके

कार्य्य के साधन भी इन्द्रियों से भिन्न स्वतन्त्र और आन्तरिक हैं—हडसन ने इस दूसरे मस्तिष्क को (soul) कहा है ❀ परन्तु आत्मा तो शरीर और मस्तिष्क सभी का अधिष्ठाता है। उसको एक मस्तिष्क कहना उचित नहीं है—अन्तःकरणों में से, चित्त की गोलक, हम इस चैत्तिक मस्तिष्क को, कह सक्ते हैं—यह चैत्तिक मस्तिष्क उस समय अपने अलौकिक कार्य्यों का सम्पादन कर सक्ता है—जब मनुष्य धारणा को अभ्यास करके चित्त को एकाग्र कर सकने की सिद्धि प्राप्त कर लिया करता है।

"एक और मुख्य अन्तर"

इन दोनों मस्तिष्कों में एक और भी बड़ा अन्तर है और वह यह है कि जब तक तार्किक बुद्धि काम करती रहती है, और मनुष्य जागृतावस्था में रहा करता है, उस समय तक उस पर मेस्मरइज़्म या हिपनाटइज़्म का कोई प्रभाव नहीं पड़ता अर्थात् कोई स्त्री पुरुष यह चाहे कि उस पुरुष को जिसकी तार्किक बुद्धि बलवती है और अपना काम दृढ़ता के साथ करती है मेस्मरइज़्म आदि से मूर्छित कर देवें तो यह सम्भव नहीं है—हाँ वह पुरुष अवश्य मूर्छित हो सकता है,

❀The law of psychic phenomena by Hudson p. 29 and 30.

जिसकी तार्किक बुद्धि बलहीन और इच्छा शक्ति को दृढ़ बनाने में असमर्थ सी है—तार्किक बुद्धि का काम बन्द हो जाने पर चैत्तिक मस्तिष्क अन्यों के प्रभावों को चाहे वे कितने ही निकम्मे क्यों न हों, बिना किन्तु परन्तु किये, ग्रहण कर लिया करता है—इस अवस्था में उससे यदि कोई कहे कि तुम बन्दर हो, कुत्ते हो या बिल्ली हो, तो वह उसे तत्काल, अगर मगर किए बिना, स्वीकार कर लेगा इत्यादि ।

अन्तःकरणों या मस्तिष्कों के कार्य्य, उनकी शक्ति और उनके अन्तर को अच्छी तरह समझ लेने और ध्यान में रखने से मनुष्य कभी ग़लती में नही पड़ सकता ।

तपोनिधि—रूहों के बुलाने का अमल करने वाले क्या केवल इन अन्तःकरणों की शक्तियों को न जानने ही से भ्रम में पड़ जाया करते हैं ?

आत्मवेत्ता—एक कारण इसका और भी है और वह है मनुष्य के शरीरों का शुद्ध और वास्तविक ज्ञान का अभाव-यदि ये दोनों कारण दूर कर दिये जावें, तो फिर मनुष्य रूहों के बुलाने और उनके संदेश लेने के भ्रम में नहीं पड़ सकता ।

तपोनिधि—शरीरों का शुद्ध और वास्तविक ज्ञान

क्या है ?

आत्मवेत्ता—इसका कुछ ज़िक्र तो इससे पहले किया जा चुका है❀—

"तीनों शरीर मिलकर काम करने के लिये बने हैं"

इन शरीरों के सम्बन्ध में एक ख़ास बात, जिसको पहले नहीं कहा गया है, वह यह है कि ये तीनों (१—स्थूल २—सूक्ष्म ३-कारण) शरीर पृथक् २ एक दूसरे से सर्वथा अलग होकर कुछ काम नहीं कर सकते। रचयिता ने इन की सृष्टि मिलकर काम करने के लिये ही की है—कारण शरीर विवादास्पद नहीं, इसलिये उसके सम्बन्ध में और कुछ कहनें की ज़रूरत नहीं है।

"स्थूल और सूक्ष्म शरीर एक दूसरे से स्वतन्त्र होकर काम नहीं कर सकते"

सूक्ष्म और स्थूल शरीर के सम्बन्ध में, यह अच्छी तरह से समझ लेना चाहिये कि ये दोनों एक दूसरे से पृथक् होकर क्रियात्मक जगत् में कुछ नहीं कर सकते, सूक्ष्म शरीर में इन्द्रियों की असली शक्ति है और स्थूल शरीर में इन्द्रियों के गोलक हैं-शक्ति और गोलक जब दोनों मिलें, तभी काम हो सकता है, अन्यथा नहीं—

❀ देखो इसी पुस्तक के दूसरे अध्याय का दूसरा परिच्छेद।

चारुदत्त— कहा जाता है कि स्वप्नावस्था में स्थूल नहीं अपितु केवल सूक्ष्म शरीर ही काम किया करता है:—

आत्मवेत्ता—स्वप्नावस्था क्रियात्मक जगत् नहीं है क्रियात्मक जगत् का सम्बन्ध केवल जागृतावस्था ही से है और जागृतावस्था में दोनों शरीर मिलकर ही काम किया करते हैं—उदाहरण के लिये आंख को लो-यदि सूक्ष्म शरीरान्तर्गत नेत्र शक्ति में कुछ विकार आचुका है, तो आँखों के गोलकों के अच्छे खासे होने पर भी मनुष्य नहीं देख सकता, इसके विपरीत यदि नेत्र शक्ति ठीक है परन्तु गोलक विकृत हैं तब भी देखने का काम बन्द ही रहेगा यही अवस्था अन्य इन्द्रियों की समझनी चाहिये।

"सूक्ष्म शरीर की सत्ता"

सूक्ष्म शरीर चीज़ क्या है, इसके समझने में दो प्रकार की भूलें हुआ करती हैं। एक प्रकार की भूल करने वाले समझा करते हैं कि सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर का उसी आकृति वाला सूक्ष्म शरीर है। उसके हाथ, पांव, कान, नाक आदि सब कुछ हैं, परन्तु बहुत छोटे पैमाने में और यह कि जब मनुष्य उत्पन्न होता है, तो उसमें मुंह के रास्ते से यह सूक्ष्म शरीर (Miniature) प्रवेश

करता है। जब वह मरता है, तो नंगे बालक के सदृश उसके शरीर से मुंह ही के रास्ते से निकल जाया करता है (१)—

दूसरी प्रकार की भूल करने वाले उसको स्थूल शरीर के खोल की भांति स्थूल शरीर के चारों ओर माना करते हैं और उसे तारों से सम्बन्धित शरीर (Astral body) कहा करते हैं—इस विचार का प्रारम्भ तो योरुप के एक दार्शनिक "पैरेसेलसैस" (Paracelsas) ने किया था*. परन्तु अब यह विचार कुछ सम्प्रदायों में आम तौर से माना जाने लगा है।§

वसन्तीदेवी—मैंने यह सुन रक्खा है कि ये तीनों शरीर पृथक् २ हैं और स्वतन्त्रता से एक दूसरे से सर्वथा पृथक् हो कर अपना २ काम अपने २ लोक में किया करते हैं—कहा जाता है कि—

लोक तीन हैं—(१) स्थूल जगत् (Physical wo-

(१) Crawley's Idea of soul P. 207 तथा आत्म दर्शन पृष्ठ १६० (पहला संस्करण)

*आत्मदर्शन पृष्ठ १८८, १८६।

§इन (रूहों) के उस (परलोक निवास की) अवस्था में हस्तपादादि अवयव रहते हैं उनका सूक्ष्म देह स्थूल देह की प्रतिछाया है—(बी० डी० स्रांच कृत सुभद्रा पृष्ठ ५०)

"तीन लोक और तीन शरीर" rld) (२) इच्छा लोक (Desire world)(३) मानस लोक (Mental world)—ये तीनों पृथक् २ नहीं हैं, किन्तु तीनों एक दूसरे में समाविष्ट (Inter Penetrating) हैं— इसी प्रकार शरीर भी तीन हैं। जिनमें से एक २ शरीर का सम्बन्ध एक २ लोक से है। शरीर एक प्रकार का यन्त्र है, जिसका काम यह होता है कि वह चेतना का संपर्क उस लोक से करा देवे जिससे उस का सम्बन्ध है—उदाहरण के लिये स्थूल शरीर को देखिये ! इसका काम यह है कि स्थूल संसार का ज्ञान जीव को करा देने का माध्यम बने–इसी प्रकार दूसरा सूक्ष्म शरीर (Astral body) दूसरे सूक्ष्म जगत् (The intermediate or astral world) की जानकारी करा देने का साधन है—यह दूसरा शरीर अभी पूर्ण विकास नहीं प्राप्त कर चुका है–अन्यथा जिस प्रकार ५ ज्ञानेन्द्रियों से स्थूल जगत प्रत्यक्ष हो जाता है। इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर से सूक्ष्म जगत् प्रत्यक्ष हो जायगा–इन ५ ज्ञानेन्द्रियों के सिवा इसी प्रकार की २ इन्द्रियाँ मस्तिष्क में और हैं:—

(१) पीट्यूटेरी शरीर (Pituitary body) ।*

*मस्तिष्क की एक ग्रन्थि है, जिसे (Pituitary gland)

(२) पीनियल ग्रन्थि (Pineal Gland) ।‡

इनको शरीर वैज्ञानिक कहते हैं कि ये इन्द्रियाँ थीं परन्तु अब ये बेकार (Vestigial) हैं। परन्तु कुछ लोगों का विचार यह है कि अवश्य पीनियल ग्रन्थि (Pineal Gland) मनुष्य की तीसरी आँख थी और यह कि अब आँख का काम नहीं देती है, परन्तु वे कहते हैं कि इस का विकास हो जाने के बाद इस इन्द्रिय का काम यह होगा कि इसके द्वारा एक मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क में विचार परिवर्तन हुआ करेगा—और इसी प्रकार विकास के बाद पीट्यूटेरी शरीर (Pituitary body) का काम यह होगा कि उससे दूसरा सूक्ष्म (Astral) जगत् स्थूल जगत् की तरह प्रत्यक्ष हो जाया करेगा—इस समय हमारा, दूसरे जगत् से, स्वप्न के द्वारा, सम्बन्ध हुआ करता है—परन्तु इस इन्द्रिय के विकसित होने पर.

कहते हैं। पिट्युटेरी शरीर (Pituitary body) एक कल्पित शरीर है, जिसकी इस समय कोई हस्ती नहीं है—कारण शरीर को ठीक न समझने से शायद यह तीसरे शरीर की कल्पना की गई है।

‡मस्तिष्क की एक ग्रन्थि है--प्रसिद्ध दार्शनिक डेकार्ट ने इसको जीवात्मा का निवास स्थान बतलाया है—(आत्मदर्शन पृष्ठ १६१—१६२ फुट नोट)।

जागृतावस्था में भी सम्बन्ध हो सकेगा—सूक्ष्म शरीर दिन और रात बराबर काम किया करता है। रात्रि में सूक्ष्म (दूसरा) जगत् इसके कार्य का क्षेत्र हुआ करता है, जिसे हम स्वप्न के द्वारा जाना करते हैं और दिन में वह इच्छा लोक में काम करने के लिये स्थूल शरीर को उत्तेजना दिया करता है—तीसरा लोक "मानस लोक" है, हम पृथम के दो लोकों की भांति इस तीसरे लोक में भी रहा करते हैं—जब हम विचार करते हैं तो उस समय हम सूक्ष्म शरीर वाली प्रकृति से भी अधिक सूक्ष्म प्रकृति (Matter) को प्रयोग में लाते हैं, जिसे प्रोफेसर क्लिंगडन क्लीफोर्ड (Prof. Kingdon Clifford) ने "मानस द्रव्य" (Mind stuff) का नाम दिया है—जिस प्रकार आकाश (Ether) में तरंगों के उठने से प्रकाश का ज्ञान होता है, इसी प्रकार मनोभावों के परिवर्तन का ज्ञान मानस द्रव्य में उठी तरंगों के द्वारा हुआ करता है—यह मानस द्रव्य भी, जिसे चेतना का यन्त्र कह सकते हैं, बहुत कम विकसित है, परन्तु इसका भी विकास हो रहा है और पूर्ण विकसित हो जाने पर हम सूक्ष्म शरीर को भी पीछे छोड़ सकेंगे और उस समय हमें मानस जगत् का पूरा २ ज्ञान प्राप्त हो सकेगा—यही वह जगत है, जिसे मरने के बाद स्वर्ग

कहा करते हैं इन्हीं तीन लोकों को "भू लोक", "भुवः लोक" और "स्व (स्वर्ग) लोक" भी कहते हैं।❀

आत्मवेत्ता—जो उद्धरण सुनाया गया है, उस में स्वयं स्वीकार किया गया है कि सूक्ष्म और पीट्यूटेरी दोनों शरीर अभी अविकसित अथवा अपूर्ण विकसित हैं और उनके तथा उनसे सम्बन्धित लोकों के जानने के साधन पीनियल ग्रन्थि और पीट्यूटेरी ग्रन्थि तो अभी सर्वथा अविकसित हैं—ऐसी दशा में इन ३ स्वतन्त्र शरीरों और उनसे सम्बन्धित ३ लोकों की कल्पना, कल्पना मात्र हैं† वास्तविक और क्रियात्मक जगत् से

❀ Man's life in the three world by Dr. Annie Besent.

† प्लेटो ने भी एक त्रुत्व (Trinity) की कल्पना की थी। उनके नाम उसने (१) जीवात्मा (Soul) (२) आत्मिक शरीर (Soul body) (३) पार्थिव शरीर (Earth body) रक्खे थे। स्वीडनवर्ग, जो अपने आपको ईश्वर का नियत किया हुआ जेरोशलीम के लिये पैग़म्बर समझा करता था (आत्मदर्शन पृष्ठ १९७-१९८) उसने भी ३ शरीरों को एक और प्रकार से वर्णन किया है, वह कहता है कि प्रत्येक मनुष्य के लिये ३ शरीर मिले हैं।

१— आन्तरिक पुरुष (Internal man)।

२—संयुक्तिक पुरुष (Rational man)।

इनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है—सूक्ष्म शरीर के सम्बन्ध में इस प्रकार की कल्पनाओं ने ही रूह बुलाने आदि की कल्पनायें प्रचलित करदी हैं, ऐसा प्रतीत होता है सूक्ष्म और स्थूल शरीरों के यथार्थ सम्बन्ध के जानने और समझ लेने से यह कल्पित वाद सर्वथा निराधार प्रतीत होने लगता है, सुतराम् कथित भूलों के दूर कर लेने और मस्तिष्कों के कार्य और शरीरों के सम्बन्ध को ठीक समझ लेने से मनुष्य भूत, प्रेत तथा रूहों के बुलाने आदि के भ्रम जाल से मुक्त हो जाता है—अस्तु अब हम देखना चाहते हैं के रूहों के बुलाने आदि के सम्बन्ध में जो कतिपय प्रयोग किये जाते हैं, उनका समाधान किस प्रकार उपर्युक्त ज्ञान प्राप्ति से किया जा सकता है।

दूसरा परिच्छेद

रूहों के बुलाने के साधनों का विवरण

रूहों के बुलाने के लिये निम्न साधन प्रयोग में

३—वाह्य पुरुष (External man)

उसने जीवन को भी तीन भागों में विभक्त किया है:—

(१) प्राकृतिक। (२) आत्मिक। (३) दिव्य। (Celestial)

(The law of psychic phenomina by Hudson p. 27 and 28.)

लाये जाया करते हैं:—

"रूहों के सन्देश लेने के साधन"

(१) प्लैनचिट । (२) स्वयं प्रेरित लेख (Automatic writing) । (३) मेज़ का हिलना (Table Tilting) (४) उज्जवल स्वप्न । (५)पर चित्त ज्ञान (Telepathy) (६) भूत, प्रेत (Ghost) अब इन में से प्रत्येक का पृथक् २ कुछ विवरण दिया जाता है—

"प्लैनचिट का कार्य्य"

"प्लैनचिट" एक हृदयाकार लकड़ी का टुकड़ा होता है, जिस के नीचे दो छोटे २ पहिये और एक पेन्सिल लगी होती है और उन्हीं के सहारे वह भूमि से उठा हुआ रहता है, उसके ऊपर दोनों किनारों पर दो पुरुष, अपना २ एक २ हाथ रखते हैं, इस प्रकार हाथों के रखने से, कोई शक्ति उत्पन्न हो जाती है, जिससे "प्लैनचिट" नीचे रक्खे हुए कागज़ पर घूमने लगता है और उसके इस प्रकार घूमने से कुछ अक्षर या चिन्ह कागज़ पर बन जाते हैं—रूहों के बुलाने वालों का कथन है कि "प्लैनचिट" से कागज़ पर जो कुछ लिखा जाता है, वह बुलाई हुई रूहों की प्रेरणा का परिणाम हुआ करता है, परन्तु यह उनका भ्रममात्र है ।

एक विद्वान "टुकैल" ने प्लैनचिट के कार्य्य के

"उसके सम्बन्ध में टुकेल की सम्मति"

लिये, सम्मति दी है कि उसके लेख शिराओं पर काम करने वाले स्वभाव (neurotic temperament) और स्वयं प्रेरणा (Auto suggestion) की अवस्था का फल होते हैं।*

"उसका असली कारण"

मनुष्य अपनी शक्तियों को जाने और उन्हें काम में ला सके इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये महामुनि पतंजलि ने योग की शिक्षा का विस्तार किया था। अभी तक हम थोड़ा बहुत ज्ञान पहले मस्तिष्क का रखते हैं, जो इच्छा शक्ति का केन्द्र है और जिसके द्वारा इरादा करके कार्य किये जाया करते हैं। परन्तु दूसरे मस्तिष्क के कार्यों से जिसका सम्बन्ध अनिच्छित प्रभावों के अंकित करने से है, आम तौर से मनुष्य अनभिज्ञ देखे गये हैं। जैसा कि कहा जा चुका है—हमारे अन्तः करणों में चित्त एक ऐसी वस्तु है, जिस में हमारे जन्म जन्मान्तर के किये हुये कार्य्यों की वासना और प्राप्त किये हुए ज्ञान की स्मृति अंकित रहती है—साधारणतया हम उनसे अनभिज्ञ होते हैं। परन्तु प्रकरण उपस्थित होने

*Evidence for the supernatural by Tuckall p. 89.90.

पर चित्त अपने वासना और स्मृति के अपरिमित कोष से उसी प्रकार के विचार अन्तःकरण में उत्पन्न कर दिया करता है। उन विचारों से केवल स्थूल दृष्टि रखने के कारण हम अनभिज्ञ होते हैं, इसलिये उनको अपने ही मस्तिष्क से निकला हुआ न समझ कर किसी न किसी बाह्य निर्मातृत्व (Agency) को, उस का कारण ठहराने की खोज किया करते हैं—इन्हीं खोज किये हुये कल्पित कारणों में से एक कारण रूहों के बुलाने का भी है।

"प्लैनचिट से क्या लिखा जाता है ?"

"प्लैनचिट" से किये हुये प्रश्नों के उत्तर जो लिखे जाया करते हैं, वे वही हुआ करते हैं, जो उस पर हाथ रखने वालों में से, किसी न किसी के अन्तःकरण में, उपर्युक्त भांति निहित हुआ करते हैं, परन्तु यह सम्भव है कि कोई प्रश्न इस प्रकार का हो, जिस का उत्तर दोनों (हाथ रखने वालों) में से किसी के अन्तःकरण में भी न हो, यदि ऐसा हुआ तो उसका उत्तर "प्लैनचिट" से भी नहीं लिखा जायगा-अवश्य हाथ रखने से प्लैनचिट में गति आजायगी, परन्तु उससे कागज़ पर सिवाय उल्टी सीधी रेखायें खिंचने के, लिखा कुछ भी न जायगा—

जैसा कि रूहों के बुलाने का अमल करने वाले

"क्या रूहें प्लैनचिट द्वारा उत्तर देती हैं ?"

कहा करते हैं, यदि "प्लैनचिट" के लेख रूहों की प्रेरणा के परिणाम होते, तो बिना किसी के "प्लैनचिट" पर हाथ रखने के प्लैनचिट स्वयं उन रूहों की प्रेरणा से, गति में आकर उत्तर लिख दिया करता परन्तु देखा यह जाता है कि जब तक उस पर हाथ न रक्खे जावें, वह गति शून्य ही बना रहता है।

"एक उदाहरण"

एक उदाहरण यहां दिया जाता है, जिससे प्रकट हो जावेगा कि रूहों के न रहने पर "प्लैनचिट" कुछ लिख दिया करता है :—

इंगलेण्ड के एक विद्वान्–"हेनस" ने लिखा है कि उस की नातेदार एक स्त्री की कन्या की मृत्यु हो गई–यह स्त्री "प्लैनचिट" द्वारा अमल किया करती थी–१६०२ ई० की घटना है कि "हेनस" ने प्लैनचिट द्वारा उसे बुलवाया। वह अपने साथ एक अमरीकन पुरुष के रूह को भी लेती आई, जो "हेनस" का मित्र था और अमरीका के पश्चिमी सीमा में स्थित "लेफ़रोय" (mount Lafroy) नामक पर्वत से गिरकर १८६६ ई० में ३० वर्ष की आयु में मर चुका था। "हेनस" का कथन है कि स्त्री ने उसे इस मृत पुरुष का उससे परि-

चय करया—परिचय होने पर "हेनस" ने उस पुरुष की रूह से पूछा कि जब वह पहाड़ से गिर कर मरा था, उसकी आयु क्या थी ? उत्तर मिला कि ३३ वर्ष की, परन्तु जब "हेनस" ने कहा कि मरते समय उसकी आयु तो ३० वर्ष की थी, तो रूह ने उत्तर दिया कि उसका अभिप्राय इस समय की आयु से है, परन्तु "हेनस" ने कहा कि इस समय की आयु तो ३६ वर्ष की होनी चाहिये, तो इस प्रकार की जिरह करने से दोनों रूहें असन्तुष्ट हुईं—इसके बाद "हेनस" ने पूछा कि अच्छा उस पहाड़ का नाम क्या था, जिस से गिर कर मृत्यु हुई थी, तो "प्लैनचिट" ने लिख दिया कि दोनों रूहें असन्तुष्ट होकर चली गयीं—*

उदाहरण से स्पष्ट है कि 'प्लैनचिट' से सही उत्तर नहीं मिला और यह भी कि यह शब्द कि "दोनों रूहें असन्तुष्ट हो कर चली गयीं "प्लैनचिट" ने रूहों के चले जाने के बाद लिखे, तो बतलाना चाहिए कि यह लेख किस की प्रेरणा का परिणाम था ? वह स्वयं तो

*But the planchette only recoded the fact that both spirits had gone away in disgust" (The Belief in personal immortality by. E, S. P. Haynes p. 93).

यह लिख नहीं सकता था और रूहें "दाल, फ़े, ऐन"S हो चुकी थीं—स्वीकार करना पड़ेगा कि यह उत्तर उसी का था जिसका हाथ "प्लैनचिट" पर रक्खा हुआ था, और इस प्रकार के उत्तर आम तौर से उसी समय दिए जाया करते हैं, जब अमल करने वाला पूछने वालों के प्रश्नों से तंग आकर अपना पीछा छुड़ाना चाहा करता है—अस्तु यह तो हुआ अमल का एक पहलू। परन्तु एक दूसरा पहलू भी है कि अनेक प्रश्नों के सही उत्तर भी प्राप्त होते हैं—तो भी जितनी अधिक इस मामले में खोज की जायगी, फल यही निकलेगा कि उत्तर चाहे सही हो, चाहे ग़लत, वह होता वही है, जो प्लैनचिटपर हाथ रखने वाले के हृदय में हुआ करता है-- इसी परिणाम को स्पष्ट करने के लिये दो संघों का विवरण दिया जाता है:—

"दो संघों का विवरण"

इन संघों में रूहों के बुलाने और उसके संदेशों की असलियत प्रकट करने के लिए ही एक व्यक्ति ने प्रश्न किये थे—इन में से पहले संघ में आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती की रूह को बुलाया गया और उन से कतिपय संघ में उपस्थित पुरुषों की ओर

S दाल+फ़े+ऐन=दफ़े=दूर

से, ख़ास २ टाइप के, साधारण स्थिति के, प्रश्न किए और उत्तर प्राप्त किए गए थे। सब प्रश्न ऐसे ही थे जिनके उत्तर प्रयोग कर्त्ताओं की ओर से दिये जा सकते थे—परन्तु एक व्यक्ति ने ऋग्वेद के उस हिस्से का एक मन्त्र पढ़ कर जिस का भाष्य स्वामी दयानन्द जी नहीं कर पाये थे, उसके अर्थ पूछे-यह बात निमित्त पुरुषों की योग्यता और ज्ञान से बाहर थी। इसलिये "प्लैनचिट" से मंत्रार्थ नहीं लिखे गये-यह हालत प्रायः प्रत्येक संघ में उपस्थित की जा सकती है, यह प्रश्न करते समय सावधानी रक्खी जावे, और सोच लिया जावे कि ऐसे ही प्रश्न किये जावेंगे, जिनके उत्तर देने, प्रयोग कर्त्ताओं की योग्यता और ज्ञान से बाहर हो। यदि सचमुच स्वामी दयानन्द की रूह आई होती, तो स्वामी जी वेद के प्रगल्भ पण्डित थे। उनकी रूह को किसी मन्त्र का अर्थ कर देना क्या मुश्किल था एक दूसरे संघ में प्रश्नकर्त्ता ने उसी संघ में उपस्थित एक जीते जागते व्यक्ति को मरा हुआ प्रकट करके उसकी रूह को बुलाने की इच्छा प्रकट की-निमित्त पुरुष इस चालाकी से वाक़िफ़ नहीं थे, जो उनके साथ की गई थी, इस लिये अपने नियमों के अनुसार उन्हों ने थोड़ी देर के बाद उत्तर दिया कि रूह आगई—उससे कुछ प्रश्न किये गये

और उत्तर भी प्राप्त किये गये, परन्तु वे उत्तर उससे सर्वथा भिन्न थे। जो वह जिन्दा पुरुष, जिसकी रूह की ओर से उत्तर दिया जाना प्रकट किया गया था, देता-- भेद खोल देने पर प्रयोग कर्त्तागण बहुत असन्तुष्ट होकर चले गये--इस दूसरे संघ की कार्य प्रणाली से स्पष्ट हो गया कि कोई रूह कहीं से न आती और न आ सकती है, यह केवल भ्रम ही भ्रम है—भला जब एक पुरुष संघ में मौजूद है और मरा भी नहीं है, तो फिर उसकी रूह कहां से आगई-'प्लैनचिट' की ओर से सचाई तो यह होती कि कितनी बार भी प्रार्थना करने पर उस ज़िन्दा पुरुष की रूह न आती-परन्तु जीते जागते पुरुष की रूह के भी आजाने से रूह बुलाने की असलियत, दिन के प्रकाश की भांति, खुल गई:—

"रूहें बोलती क्यों नहीं"

इस के सिवा एक बात और भी विचार करने के योग्य है कि ये आने वाली रूहें लिखवा कर हीं क्यों उत्तर दिया करती हैं, मुंह से बोलती क्यों नहीं—यदि अपनी सूरत न दिखावें, न सही, परन्तु बोल कर उत्तर क्यों नहीं दे सकतीं—जब रूहें परलोक में अन्न खाती हैं, शौच जाती हैं, वस्त्र पहनती हैं, शिक्षा पाती हैं, गुरु की देख रेख में रहतीं

हैं (१)—जब वे वहां परस्पर हँसी और मसखरी भी करती हैं (?)—जब वे वहां चोरी चुगली भी करती हैं (२), जब वे वहाँ झूंठ बोलती हैं—जब उन्हें दण्ड भी भोगना पड़ता है (३)—जब उनकी भूतों के सदृश आवाज़ (Ghostly voice) भी "चींची"(Twitter) करने अथवा "धीमी" बरबराहट (Thin murmur) की तरह होती हैं (४) । अथवा उनकी आवाज़ आज-कल के आत्मवादियों के आविष्कारानुसा, काना फूसी (whisper) की भाँति है, जब उनका वजन भी ३-४ औंस का बतलाया जाता है, तो फिर वे संघों में आकर क्यों नहीं बोलतीं—यहां आकर धीरे २ ही बोला करें कानाफूसी ही किया करें—जब उनके हाथ पाँव होते हैं, यह तो कोई कल्पना हीं नहीं कर सकता कि मुंह न होता होगा—जब मुंह होता है, तो फिर उन को उस के खोलने और ज़ुबान हिलाने में क्यों सकोच करना चाहिये ? जब उनके इस प्रकार चुप्पी साधने से उनकी

(?) बी० डी० ऋषि सुभद्रा, पृष्ठ ५६, ५७, ५६ ।

(१) बी० डी० ऋषि कृत सुभद्रा पृष्ठ ८५ ।
(२) „ „ ७५ ।
(३) „ „ ७३ ।
(४) Growley's, idea of soul P. 20.

हस्ती ही में संदेह किया जा रहा है, तब तो उन्हें मुँह खोल कर कम से कम अपनी हस्ती तो साबित ही कर देनी चाहिये—एक उर्दू के कवि ने लिखा है:—

कम बोलना अदा है हरचन्द, पर न इतना—
मुंद जाय चश्मे आशिक़ तो भी वो मुँह न खोले ॥

"माइर्स" ने इस प्रकार के लेख को, एक प्रकार "स्वयम् प्रेरित लेख, (Automatic writing)" का स्वयं प्रेरित कार्य (A form of motor automatism,), ठहराया है और स्वीकार किया है कि लेख प्रणाली के अभिव्यक्त बाह्य व्यवसाय से यह सिद्ध नहीं होता कि लेख से प्राप्त संदेश स्वयं लेखक के मस्तिष्क से निकले हुये नहीं हैं—हाँ उसने इस बात को अवश्य स्वीकार किया है कि अनेक सूरतों में सन्देश ठीक उतरते हैं (१):—

एक और पश्चिमी लेखक ने लिखा है कि यदि लेख प्रणाली का अच्छा ख़ासा अभ्यास किया जावे, तो अभ्यासी लेखक निपुण बन सकता है और उसके संदेश भी ठीक उतर सकते हैं—उसने एक बार इसका अभ्यास शुरू भी किया था—अभ्यास इस प्रकार से किया कि

(१) Human Personality by Myres Vol·1 P. 27.

वह अपनी आँखें बन्द करके बैठ गया और अपने हाथ के कलम को छोड़ दिया कि जिस प्रकार चाहे कागज पर घूमे—क़लम घूमने लगा, और कुछ अनमेल बेजोड़ विचार प्रदर्शक वाक्य लिखे गये–अभ्यासकर्ता को स्वीकार है कि उसका मन बिलकुल निर्विषय नहीं था और यह भी कि जो वाक्य लिखे गये, वे उसके मस्तिष्क की भीतरी तह के प्रभावों के परिणाम थे—उसने यह भी लिखा है कि केवल १० मिनट यह अभ्यास किया था। यदि वह पूरा दिन इसमें लगाता, तो शायद बहुत कौतूहल प्रद परिणाम निकलता*—

अस्तु यहां हम एक उदाहरण देते हैं, जो स्वयं "उदाहरण" माइर्स से संबन्धित है और जिससे यह बात स्पष्ट हो जायगी कि स्वयं प्रेरित लेख सदैव ठीक नहीं हुआ करते—'माइर्स' ने एक चिट्ठी लिखी और उसको दो तीन लिफ़ाफ़ों में बन्द करके मुहर लगा कर एक बैंक में सुरक्षित रखने के लिए दे दी, जिससे उसका मज़मून प्रकट न होने पावे-तत्पश्चात् स्वयं प्रेरित लेख का एक संघ संघटित किया गया कि उस चिट्ठी का मज़मून मालूम किया जावे—एक "वीराल देवी" थी, जो अमल

* The belief in personal immortality by Haynes P. 94 and 95.

करने वाली थीं—देवी ने स्वयं प्रेरित लेख के द्वारा चिट्ठी का मज़मून काग़ज़ पर लिख लिया और उस लेख को उन्हों ने संघ में प्रकट कर दिया, उसके बाद १३ दिसम्बर १६०४ को वह लिफ़ाफ़ा बैंक से मंगाकर खोला गया और चिट्ठी पढ़ी गई, तो प्रकट हुआ कि चिट्ठी का असली मज़मून और वह मज़मून जो स्वयं प्रेरित लेख से प्राप्त किया गया था, एक दूसरे से सर्वथा भिन्न थे—इस लेख प्रणाली का अभ्यास बहुत सुगमता से हो जाता है—अभ्यास प्रणाली इस प्रकार है:—

अभ्यास करने वाले को शान्त चित्त होकर एक मेज़ के पास बैठना चाहिये—पेन्सिल हाथ में हो और "स्वयं प्रेरित लेख का काग़ज मेज़ पर रक्खा हुआ हो—अभ्यास किस प्रकार और मस्तिष्क को इच्छा शून्य रखने किया जाता है ?" का यत्न करना चाहिये। पेन्सिल हाथ में इस प्रकार रखनी चाहिये, मानो यह कुछ लिखना चाहता है। प्रारम्भ में हाथ में कुछ कपकपी-सी अनुभव होती है तब पेंसिल लिखने लगती है—उसके बाद लिखना प्रारम्भ हो जाता है। कुल अभ्यास में कुछेक सप्ताह लगते हैं। अभ्यास करने वालों को सप्ताह में

दो चार वार अभ्यास करना अच्छा होता है ❀ ।

ऊपर जो उदाहरण दिया गया है, उससे लेख प्रणाली का अन्धेरा पहलू प्रकट होता है, परन्तु बात ऐसी नहीं है कि उसका एक ही अन्धेरा पहलू हो—"सर आलिवरलाज" ने अपने एक पुस्तक में अनेक उदाहरण दिये हैं, जिनसे उसका दूसरा पहलू भी प्रकट होता है। अर्थात् उसके लेख आदि कभी असत्य होते हैं, तो कभी सत्य भी होते हैं। उसी पुस्तक में से एक दूसरे पहलू को प्रकट करने वाला उदाहरण दिया जाता है।

"इस यन्त्र के लेख ठीक भी होते हैं"

'एक दूसरा उदाहरण'

एक बार "स्टेन्टन मोसेज़" महाशय डाक्टर "स्पीर" के पुस्तकालय में बैठे स्वयं चलद् यन्त्र के अदृश्य लेखक से बात कर रहे थे—

नोट—वह अदृश्य लेखक पहले 'फ़िन्यूइट' (phinuit) परन्तु अब "रैक्टर" (Rector) अपना नाम बतलाया है—उनका एक प्रश्नोत्तर इस प्रकार है:—

मोसेज़—मुझे बतलाया गया है कि आप पढ़ सकते हैं, क्या यह ठीक है और क्या आप कोई पुस्तक पढ़ सकते हैं ?

❀ Automatic writing by A. Verner P. 11.

नोट—मोसेज़ अपना प्रश्न मुख से कहते थे, रेक्टर का उत्तर स्वयं चलद् यन्त्र से लिखा जाता था। मोसेज़ का कथन है कि स्वयं चलद् यन्त्र की लेख प्रणाली बदल गई, क्योंकि पहले कोई और लिखता था अब उसका अदृश्य लेखक रेक्टर है।

रेक्टर—हां, कठिनता से।

मोसेज़—क्या आप कृपा करके एनील्ड (Aeneild) के प्रथम पुस्तक की अन्तिम पंक्ति लिखेंगे?

रेक्टर—प्रतीक्षा करो—(फिर उसने लिख दिया) "Omnibas errantem terris at fluctibus aestas."

मोसेज़—(यह ठीक था) ठीक ऐसा ही·····क्या आप पुस्तक कोष्ठ तक जायेंगे, और दूसरे कोष्ट के अन्तिम पुस्तक के ९४.वें पृष्ट का अन्तिम वाक्य पढ़ेंगे? (मोसेज़ ने लिखा-है कि उन्हों ने यह प्रश्न अनायास कर दिया था। उन को मालूम भी नहीं था कि वह कौनसी पुस्तक है जिसके पढ़ने को उन्हों ने कह दिया था)। थोड़ी सी देर के बाद यन्त्र ने लिख दिया-

'I will curtly prove by a short historical narrative, that property is a novelty, and has gradually arisen or grown up since the primitive and pure time of christianity, not only

since the apostolic age, but even since the lamentable union of kirk and state by constantine.'

नोट—पुस्तक निकाल कर जांच करने से विदित हुआ कि रेक्टर का लेख शुद्ध है, केवल एक भूल उस में यह थी कि लेख में 'Account' की जगह 'Narrative' लिखा गया था। जिस पुस्तक का उद्धरण है उस का नाम था "Rogers Antipopriestian"※

"लाज" महाशय ने इस यन्त्र के सम्बन्ध में अपनी सम्मति इस प्रकार लिखी है—"वे अविशिष्ट जीव, जो निकट भविष्यत् में इस पृथ्वी पर थे और अब मर चुके हैं, कभी २ और कठिनता के साथ ऐसे मध्यवर्ती यन्त्र रचना द्वारा, जो उनके अधिकार में दी जाती है, हम से संलाप करते हैं; यह यन्त्र रचना निमित्त पुरुष (माध्यम) को अस्थायी रीति से, अपने मस्तिष्क से काम लेना बन्द कर देता है, तब वे अविशिष्ट जीव उससे काम लेते हैं, इस उद्देश्य से कि अपने विचार उस में भरें, और वही उनके इस प्रकार भरे हुए विचार प्राकृतिक जगत् में, संलाप अथवा लेख द्वारा प्रकट होते हैं—और अविशिष्ट जीवों का, इस प्रकार ऐसे प्राकृतिक साधनों

※ Survival of man by Sir Oliver Lodge p. 104–109.

(मस्तिष्कादि) के काम में लाने ही को, जो वास्तव में उनके नहीं हैं, स्वयं "चलद् यन्त्र" कहते हैं।*

लाज की इस सम्मति के विरुद्ध एक दूसरे विद्वान ने इस स्वयं प्रेरित लेख का कारण इस प्रकार प्रकट किया है:—

'लघु' (दूसरा) मस्तिष्क (Subjective mind) तन्तुओं, पेशियों, हाथ और बाहु पर अपना अधिकार कर लेता और यही पेन्सिल को आगे चलाता है—इस बीच में पहला मस्तिष्क (मन) बिलकुल शान्त और गति शून्य और प्रायः निर्विषय—सा हुआ करता है।§

पहले कहा जा चुका है कि चित्त में जन्म जन्मान्तर के विचार निहित रहते हैं और प्रकरण उपस्थित होने पर जागृत हो जाते हैं—चित्त का एकाग्र हो जाना इस के लिए जरूरी है—एकाग्रित चित्त को ध्यान और समाधि के साथ जोड़ देने से और फिर इस सम्मिलित शक्ति को किसी अप्रकट विषय पर लगा देने से वह विषय प्रकट और स्पष्ट हो जाता है। योग की परिभाषा

*Survival of man by Sir Oliver Lodge P. 106

§The Law of psychic phenomena by T. J. Hudson P. 252.

में इसी का नाम संयम करना है। "मोसेज़" को जो उत्तर "रेकटर" से प्राप्त हुए, असल में वे उत्तर उसी के अपने चित्त के दिये हुए थे—यदि चित्त के स्मृति-भण्डार में यह ज्ञान न होता तो फिर अन्य अवसरों की भांति इसका भी उत्तर न मिलता:—

"मेज़ का हिलना और झुकना" मेज़ के द्वारा भी रूहों के बुलाने की बात कही जाती है। उसका अमल इस प्रकार किया जाता है* :—

एक गोल मेज़ लो और कुछेक पुरुष स्त्री इस के चारों ओर बैठ जावें और अपने हाथों की हथेलियों को मेज़ पर हलकेपन के साथ रक्खें और प्रतीक्षा करें कि वे किसी गति को अनुभव करने वाले हैं।

"कम्पन का अनुभव" थोड़ी देर में वे एक विलक्षण कम्पन अनुभव करने लगेंगे जिसका भाव, इस अमल के करने वाले यह बतलाया करते हैं कि, यह किसी रूह के वहां उपस्थित होने की सूचना है—इसके बाद कुछ मिनट गुज़र जाने पर मेज़ के चारों ओर बैठने वालों में से कोई एक मेज़ से कुछ इस प्रकार कहे या पूछे, मानो वह किसी व्यक्ति को सम्बोधन करके कुछ

---

* Table Rapping and Automatic writing by A verner. F. A. I. Page. 46.

कह या पूछ रहा है।

प्रश्नकर्त्ता को उत्तर देने के नियम भी रूह को बतला देने चाहियें, जिस से वह प्रश्न कर रहा है— वे नियम कुछ इस प्रकार के होने चाहियें कि यदि तीन बार मेज़ झुके या हिले या खटका हो तो उसका अभिप्राय "हां" समझा जावेगा यदि एक खटका हो तो "नहीं" यदि दो हों तो "सन्दिग्ध" यदि चार हों तो "अच्छी बात" समझी जायगी—और मेज़ के इन्हीं झुकावों या खटकों की संख्या से प्रश्न का उत्तर लिया जाया करता है—मेज़ के चारों ओर बैठने के भी कुछ नियम नियत हैं और वे ये हैं कि एक पुरुष उसके बाद एक स्त्री फिर पुरुष और फिर स्त्री इत्यादि, कभी २ इस नियम का अपवाद भी कर लिया जाता है—अन्धेरे कमरे में बैठ कर यह अमल करना उपयोगी समझा जाता है—दोपहर के बाद सायंकाल या रात्रि का प्रारम्भ, इस अमल के करने के लिये अच्छे समझे जाते हैं—

"उत्तर देने के नियम"

यह भी कहा जाता है कि कभी २ अधिक अभ्यास करने के बाद, अमल करने वालों को कमरे में, प्रकाश, कभी २ तारे, कभी २ मनुष्यों के शिर आदि भी, दिखाई दिया करते हैं—अस्तु इस प्रकार मेज़ के हिलने और खटकों

"प्रकाश और तारों का दृश्य"

से रूह का उत्तर समझ लिया जाता है।

परन्तु मेज़ के हिलने और खटके होने आदि के कारण मेज़ पर प्रयोग कर्ताओं के हाथ हुआ करते हैं—यदि हाथ न रक्खे जावें, तो कितने ही विश्वास और श्रद्धा से क्यों न किसी रूह को बुलाया जावे, वहां कोई फटक नहीं सकता—जब मेज़ पर हाथ रख कर गति के अनुभव की प्रतीक्षा करते हैं, तभी दूसरे लघु मस्तिष्क के प्रभाव से हाथ में गति आती है और वही गति मेज़ के भी हिलने जुलने का कारण हो जाया करती है।

"मेज़ के हिलने आदि का कारण"

पश्चिमी अध्यात्मवाद का एक अंग उज्ज्वल स्वप्न भी है, जिसके द्वारा उसके अनुयायी अलौकिक रीति से घटनाओं के ज्ञान प्राप्ति की सम्भावना स्वीकार करते हैं। सर आलिवर लाज ने लिखा है* कि ज्ञान तो अवश्य किसी माध्यम के द्वारा प्राप्त होता है, परन्तु उस (माध्यम) का ज्ञान हम को कुछ भी नहीं है, और किस प्रकार यह अलौकिक ज्ञान हम तक पहुँचता है, यह बात भी अभी तक

"उज्वल स्वप्न"

*Survival of man by Sir Oliver Lodge P. 112

अप्रकट है। सर आलिवर लाज तथा अन्य अध्यात्म वादियों ने इस वाद के स्थापनार्थ अनेक घटनायें उपस्थित की हैं, जिस में से उदाहरणार्थ, 'लाज' महोदय की वर्णित, एक घटना यहां लिखी जाती है:—

"एक उदाहरण"

पादरी इ० के० इलियट जब एटलांटिक महासागर में एक जहाज़ पर सफ़र कर रहे थे, जहां तार और चिट्ठी नहीं पहुँच सकती थी, उन्होंने १४ जनवरी १८८७ को अपनी 'दिन पत्रिका' में लिखा है, कि पिछली रात्रि मुझे स्वप्न आया कि मेरे चचा एच० ई० का पत्र आया है। जिसमें मुझे मेरे प्यारे भाई की, तीसरी जनवरी को मृत्यु होजाने की सूचना दी है। उससे मुझे बड़ा दुःख हुआ। मेरा भाई स्वीटज़रलैंड में बीमार अवश्य था, परन्तु उसका 'अन्तिम समाचार' जो इंगलैंड छोड़ते समय मुझे मिला था, यह था कि अब वह अच्छा है। जब मैं अपनी यात्रा समाप्त करके इंगलैंड वापिस आया, तो जैसी कि मुझे प्रतीक्षा थी, मुझे पत्र मिला, जिस में ३ जनवरी को भाई की मृत्यु होजाने की मुझे सूचना दी गई थी।§

§Survival of man by Sir oliver Lodge P. 106 & 107

"इसका कारण"

इस प्रकार की घटनाओं के स्वप्न द्वारा ज्ञान होने का असली कारण परोक्ष दर्शन (Clair voyance) है, लघु मस्तिष्क (Subjective mind) कहा जा चुका है कि स्वप्न में काम किया करता है और परोक्ष दर्शन उसके अधिकार में है। इसलिये उसको इसी परोक्ष दर्शन की योग्यता द्वारा, इस प्रकार का ज्ञान होजाया करता है—इस ज्ञान के प्राप्त होने में किसी बाह्य साधन का, रत्ती भर भी, सम्बन्ध नहीं है—यह अपनी ही शक्तियों का अज्ञान है, जिसकी वजह से हम इसका कारण बाहर ढूंढा करते हैं।

"भूत प्रेत वाद"

भूत प्रेत की सत्ता माया के सदृश है। पश्चिम के अनेक विद्वान् इसको ऐसा ही मानते भी हैं, उनका कथन है कि दृष्टि की अपूर्णता और विभ्रम से मनुष्य कुछ का कुछ देखने लगता है। उनकी परिभाषा में इस प्रकार कुछ का कुछ देखने को इन्द्रजाल (Halucination) कहते हैं—कहा जाता है कि एक अंग्रेज़ कृपक देखने का अभ्यासी था कि उसके खेत में इधर से उधर फ़ौजी सिपाही घूमा करते हैं—इसी प्रकार एक स्त्री कहा करती थी कि वह कतिपय परिचित मरे हुए पुरुषों को देखा

करती है कि उसके कमरे में घूमा करते हैं—टुकेल कहता है कि इंगलैंड की पार्लियामेंट के एक सदस्य को विश्वास था कि उसने पार्लियामेंट के एक मरे हुए सदस्य को पार्लियामेन्ट भवन के बरामदे में टहलते हुये देखा है। जिस प्रकार दृष्टि विभ्रम से कुछ का कुछ देखता है—उसी प्रकार श्रोत्र विभ्रम से कुछ का कुछ अथवा कुछ न होने पर भी, कुछ न कुछ सुना करता है।* प्रोफ़ेसर "बेरेट" ने भूत वाद की व्याख्या इस प्रकार की है।§

"एक पश्चिमी विद्वान् की सम्मति"

अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते हैं—जिन से, पहले दो की भांति यह बात प्रकट होती है कि भूत कालिक घटनायें जो विशेष-विशेष व्यक्तियों पर घटित होती हैं, प्राकृतिक ढांचों अथवा स्थानों पर जिन से उन व्यक्तियों का सम्बन्ध था कुछ इस प्रकार की अपनी छाप लगी छोड़ जाती हैं कि उन की छाया अथवा गूंज का उन पुरुषों को अनुभव होने

---

*Immortality by H. P. Hayness.

§ Psychic Research by Prof. Barret P. 197-198.

लगता है, जो अब यहां रहते हैं और जो चलेन्द्रिय अथवा मृदु प्रकृति वाले होते हैं—यद्यपि यह वाद सातिशय और विश्वास के अयोग्य सा प्रतीत होता है, परन्तु भौतिक विज्ञान अथवा आत्मिक खोज की सीमा में इसके अनुरूप उदाहरणों की कमी नहीं है—एक सिक्के को एक कांच के टुकड़े पर कुछ काल के लिये छोड़ दो, उसके बाद हटाने पर उसका चिन्ह काँच पर रह जाता है और काँच पर के चिन्ह को व्यक्त करने से दिखाई देने लगता है—लकड़ी कोयले अथवा अन्य प्राकृतिक वस्तुओं के टुकड़े फ़ोटोग्राफ़ी के प्लेट पर रखने और कुछ काल के बाद हटाने से उनके चिन्ह प्लेट पर रह जाते हैं और जिस वस्तु के वह चिन्ह होते हैं, प्लेट को फ़ोटोग्राफ़ी के नियमानुसार विकसित करने से वही वस्तु दिखाई देने लगती है—ये और इस प्रकार के अन्य दृष्यों के हेतु, भौदिक विज्ञान से प्रकट होते हैं—परन्तु आत्म जगत् में इस प्रकार के किसी उदाहरण से यह वाद प्रमाणित नहीं किया जा सकता।

यहां एक लड़की का उदाहरण दिया जाता है जिस से प्रकट होजायगा कि भूत प्रेत का विचार कितना मिथ्या है:—

'भूत रूपी लड़की का रहस्य' (Ghost girl Mystery) रोमानिया की एक लड़की जिस का नाम इलयूनोर ज़ूगन (Eleonora Zugun) था और जो भूत के रूप में थी। परीक्षा के लिये लंदन, सितम्बर १६२६ ई० में, लाई गई थी—वह निनाद पूरित भूत समझी जाती थी और उसके शरीर पर अनायास किसी नोकदार आले से किये हुये छिद्रमय चिन्ह (Stigmatic markings) प्रकट होते थे—रसायनशाला में जांच करने के बाद वैज्ञानिकों ने अपनी सम्मति दी कि "लड़की लड़कपन में, प्रकट होता है कि भूत प्रेत की गढ़ी हुई कहानियों से भयभीत हो चुकी है—उसके हृदय से यदि यह भय दूर कर दिया जावे तो शरीर पर चिन्हों का होना बन्द होजायगा–डाक्टर आर जे० टिलयार्ड (Dr. R. J. Tillyard) ने लड़की और उसके साथियों को उसी समय एक परीक्षण करके दिखलाया कि बिना किसी प्रकार की गति पहुँचाये किस प्रकार छोटी २ वस्तुयें गतिमान हो गई ※।

एक पश्चिमी विद्वान् का कथन है–दृष्टि विभ्रम से "एक और विद्वान् एक ओर तो भूत देखा जाता है—

※ Leader Allahabad Dt. 23—3—1927.

को सम्मति" और फिर दूसरी ओर परचित्तज्ञान-वाद द्वारा उस पर दूसरी रंगत चढ़ जाती है और इस प्रकार कल्पित भूत फिर विभ्रम का भूत नहीं रहता किन्तु असली कहलाने लगता है † ।

"लाज इसके समर्थक हैं" सर आलिवर लाज इस पक्ष के भी समर्थक हैं। उन्होंने अपने एक पुस्तक में लिखा है कि "कल्पना" करो कि भूत प्रेतों की कोई प्राकृतिक सत्ता नहीं है, वह चित्त संस्कार (Impressions) अथवा छाया मात्र है—जो ग्राहक के मस्तिष्क में पड़ा है—और जो उस संस्कार अथवा छाया के अनुरूप है। जो किसी दूसरे पुरुष के मस्तिष्क में उत्पन्न हुआ है और एक तीसरे व्यक्ति द्वारा पहले व्यक्ति के मस्तिष्क में परिवर्तित किया गया है— लाज महाशय ने अपनी इसी पुस्तक में शीघ्र मरे हुए पुरुषों की छाया (Phantom) के दिखाई देने का समर्थन किया है, उन्होंने पृष्ठ ६६ पर उसी के प्रमाणित करने के लिये एक उदाहरण भी दिया है—जिसका सार यह है 'मेडम मरते विली' जो डच राजदूत की विधवा, 'एक उदाहरण' स्टाक होलम नगर में थीं, उसने पति के शरीरपात हो जाने पर एक सुनार

† Immortality by H. P. Hayness.

ने चाँदी के दाम मांगे, जो उनके पति ने क्रय की थी, मेडम को विश्वास था कि रुपया उनके पति द्वारा चुकाया जा चुका है, परन्तु सुनार की रसीद नहीं मिलती थी— मेडम ने "स्वीडन वर्ग" महाशय को अपने घर बुलाया और उनसे इस कष्ट की चमा प्रार्थना करते हुए प्रार्थना की कि जैसा कि प्रसिद्ध है, यदि वे मृत जीवों की आत्माओं से बात चीत कर और बुला सकते हैं, तो उनके मृत पति की आत्मा से उस चाँदी का विवरण पूछें। तीन दिन के बाद स्वीडनवर्ग ने मृत के पति की आत्मा से पूछ कर मेडम को बतला दिया कि उनके पति का उत्तर यह है कि चांदी का रुपया चुकाया जा चुका है और रसीद उसकी ऊपर के कमरे की अलमारी में है—उस पर मेडम ने कहा कि अलमारी तो साफ़ करके देख ली गई है, उसमें रसीद नहीं मिली और काग़ज़ अवश्य हैं—स्वीडनवर्ग ने कहा कि उनके पति ने बतलाया है कि अलमारी की बाईं दराज़ खींचने के बाद एक तख्त दिखलाई देगा, उसे खींच लेना चाहिये, तब एक गुप्तकोष्ट निकलेगा—उस में डचराज सम्बन्धी निजू पत्र हैं और अपेक्षित रसीद भी—इस गुप्तकोष्ट का हाल कोई भी नहीं जानता था। मेडम और अन्य पुरुष जो उस समय उपस्थित थे सब के

सब ऊपर के कमरे में गये और अलमारी उपर्युक्त भाँति खोली गई, तो उसमें वह गुप्तकोष्ट निकला—और उस में बतलाये गये कागज़ और वह रसीद भी निकली"* तथा ऐसे ही अन्य उदहारणों से लाज महोदय ने इस वाद को प्रमाणित करने का यत्न किया है परन्तु असल में यह सब करामात अपनी शक्तियों की "वास्तविकता" है— परचित्तज्ञान (Telepathy)से इस प्रकार के, जैसे कि मेज़ के गुप्तकोष्ट का हाल, अनेक ऐसी गुप्त और अप्रकट बातें प्रकट हो जाया करती हैं। परचित्तज्ञान का एक उदाहरण दिया जाता है:—एक न्यूयार्क की माध्यमा ने संयुक्त राज्य के पेटेन्ट आफिस के पदाधिकारी (Examiner) के सम्बन्ध में अनेक बातें प्रकट कीं, जिनका उसे कुछ ज्ञान न था—यह परीक्षण केवल उस देवी (मेडियम) द्वारा परचित्तज्ञानिक शक्तियों की जांच के लिए ही किया किया गया था और यह भी प्रकट कर देने के लिए कि इस प्रकार के उत्तरों के देने का सम्बन्ध किसी मृत-पुरुष की रूह से नहीं—वह पदाधिकारी स्वयं वहाँ मौजूद था परन्तु मेडियम और पदाधिकारी दोनों एक दूसरे से सर्वथा अनभिज्ञ थे, यहां तक कि एक को दूसरे

* Survival of man by Sir Oliver Lodge P. 78

के नाम तक का भी ज्ञान न था—और जब वहां परस्पर एक दूसरे का परिचय कराया गया तो वह भी कल्पित नामों से—पदाधिकारी के सम्बन्ध में मेडियम को कुछ बतलाना था, सब ठीक हो जाने पर मेडियम ने कहना शुरू किया:—

मैं एक बड़ी इमारत देख रही हूँ, जिस में अनेक कमरे हैं, इन्हीं कमरों में से एक में, मैं तुम को देखती हूँ—तुम एक बड़े डेस्क के सामने बैठे हो जिस पर बहुत से कागज़ फैले हुए हैं मैं डेस्क के दराज़ों को भी देखती हूँ मुझे ऐसा जान पड़ता है कि तुम पेटेन्ट के स्वत्वों से सम्बन्धित कुछ काम करते हो-परन्तु तुम्हारा यही एक काम नहीं—मैं तुमको तुम्हारे घर के पुस्तकालय में भी देखती हूँ, जिस में बहुत से पुस्तक और हस्तलिखित पुस्तकें (Manuscripts) भी हैं—ऐसा मालूम होता है कि तुम एक पुस्तक भी लिख रहे हो—(इसके बाद मेडियम ने लाइब्रेरी की अलमारियों तथा अन्य सामानों की सही तफ़सील भी बतला दी और उसके बाद कहा कि) "और पुस्तक के विषय के सम्बन्ध में जिस परिणाम पर तुम पहुँचे हो उसे भी मैं देखती हूँ ।"

पदाधिकारी—क्या वह परिणाम ठीक है ?

मेडियम—"यह मैं नहीं बतला सकती, क्योंकि मैं

उस (पुस्तक के) विषय से अनभिज्ञ हूँ—(इसके बाद मेडियम ने पुस्तक तैयार करने में जिससे सहायता ली जा रही थी, उसका भी हाल बतलाया इत्यादि) ।*

उदाहरण से स्पष्ट है कि किस प्रकार मेडियम ने अपनी, अभ्यस्त परचित्तज्ञानिक शक्ति से, पदाधिकार का समस्त हाल बतला दिया—यहां तक कि लेखान्त-र्गत पुस्तक का परिणाम भी बतला दिया—अपनी शक्तियों से अनभिज्ञ नर नारी इस को भी किसी रूह का काम ही बतलाते, परन्तु ये सब परचित्तज्ञानिक शक्ति के विकास का परिणाम है।

पश्चिमी अध्यात्मवाद का एक अंग जो अत्यन्त

"रूहों का फोटो लेना"

विवादास्पद है, रूहों का फोटो लेना (spirit photography) है—थोड़े से अध्यात्मवादी इस क्रिया पर पूरा २ विश्वास रखते हैं, परन्तु अधिक संख्या में इसके विरोधी हैं। इस क्रिया का कुछ रूप जाना जा सके, इसके लिये एक उदाहरण दिया जाता है—

सर आर्थरकोनन डोयल(Sir Arthur Conon Doyle) ने स्वयं इस फोटोग्राफी का परीक्षण करके उसका

* The Law of psychic phenemena by Hudson P. 224-226

उल्लेख इस प्रकार अपनी एक पुस्तक में किया है।*
डोयल का कथन है कि "१६१६ की ग्रीष्म ऋतु में इसी परीक्षण के लिये पहले से नियत किये हुये समय पर, क्रियू (Crewe) गये म० ओटन (Mr. outen) सम्पादक 'टू वर्ल्ड्स' (Two worlds) और वाकर (Mr. walker) दो अध्यात्मवादी मेरे साथ थे—होप और देवी बक्सटन (Mr. Hope and Mrs. Buxton.) माध्यमा हमारी प्रतीक्षा कर रही थीं—भेंट होने पर एक संक्षिप्त धार्मिक कृत्य के बाद होप और मैं एक अन्धगृह (Dark room) में गये—वहां पहुँच कर मैंने प्लेट का पैकट खोला, जो मैं मानचेस्टर से खरीद करके साथ ले गया था—और उनमें से दो प्लेटों पर चिन्ह करके कैरियर (Karrier=Dark Slide) में रख दिया, तब कैरियर को होप ने कैमरा (Camera) में लगा दिया और हम तीनों अध्यात्मवादी एक कम्बल का पीछे से साया करके बैठे-तब परदा खोला गया और कैरियर फिर अन्धगृह में पहुँचाया गया और वहां मैंने स्वयं अपने हाथों से उन प्लेटों को निकाला और उन्हें व्यक्त (Develop) किया और जहां तक मैं अनुभव कर सकता

* The case of sprit photography by sir A. C. Doyle P. 18 & 19

था, इस सब कार्य्य में प्लेटों के बदले जाने का कोई मौक़ा न था फ़ोटो जो इस प्रकार खींचा उसकी हालत यह थी कि हमारे चारों ओर गहरे बादल थे और एक गोशे में एक नवयुवक का चेहरा और उस के बाल थे— और चित्र पर यह इबारत लिखी थी—"well done. Friend, Doyle I welcome you to crewe, Greetings to all. T. colley.) अर्थात् टी, कौले की ओर से मेरे नाम सन्देश था, जिसमें लिखा था कि' मित्र डोइल ! आपने बहुत अच्छा किया, मैं क्रियू में (आने के लिये) स्वागत करता हूँ, सबको नमस्कार"—'यह कौले महाशय इस 'क्रियू सरकल' (Crew circle,) के संस्थापक थे—और संदेश के अक्षर कौले के अक्षरों से मिलते थे'।

"इसकी असलियत" डोइल ने उपर्युक्त विवरण अपने एक परीक्षण का देकर दावा किया है कि रूहों के फ़ोटो लेने की बात ठीक है—परन्तु जो इस क्रिया के विरोधी हैं, उनका कहना यह है कि ये माध्यम लोग पेशावर होते हैं और उन्हों ने अपनी रोजी कमाने का यह ढंग निकाल लिया है—और अपने काम में इतने होशियार होते हैं, और इतनी सफाई से प्लेटों को बदल लिया करते हैं कि अपरिचित पुरुषों को

उसका ज्ञान भी नहीं होने पाता और यह कि ये लोग जो फ़ोटो में बादलों के चिन्ह दिखलाया करते हैं, ये चिन्ह ऊन (Cotton wool) का अक्स होता है, जो सामने रखने से प्लेट पर पड़ा करता है। यह विरोध स्वयं एक प्रतिष्ठित अध्यात्मवाद के संघ (Society for Psychic Research) की ओर से हुआ था—इस संघ ने इस क्रिया की सचाई जानने का यत्न किया—संघ के अग्रणी प्राइस महाशय (Mr. Price) ने माध्यम होप के साथ पत्र व्यवहार करके परीक्षण को समय नियत कराया—नियत समय पर प्राइस नियत स्थान पर पहुँचे उन्होंने अपने साथ लेजाने के लिये* एक कम्पनी से प्लेट खरीदे और उनमें से ६ प्लेटों पर एक्सरेज़ (X—Rays) से इस प्रकार कम्पनी का व्यौपारिक चिन्ह (Trade mark) चिन्हित करा दिया गया कि बाहर से किसी को पता न चले कि उस पर कोई चिन्ह है.. परन्तु व्यक्त (Develop) करने से वह चिन्ह जाना जा सके, इस प्रकार के चिन्हित ६ प्लेटों को लेकर प्राइस महाशय वहां पहुँचे।

"एक दूसरा उदाहरण" प्राइस के साथ एक प्रतिष्ठित सज्जन "सीमोर" (Mr. Seymour) और एक इन्द्रजालिक (Conjurer) भी था—यह परीक्षण

*Imprerial Dry plate Company.

२४ फरवरी सन् १६२८ ई० को लण्डन के साइकिक कोलिज (The British College of Psychic Science, London) में किया गया था * प्राइस का कहना है कि मैंने अपने आप को बहुत प्रसन्न बनाया और प्रारम्भिक मामूली धार्मिक कृत्यों के बाद प्राइस और होप-दोनों अन्धगृह में गए—वहां वे चिन्हित प्लेट खोले गए और दो प्लेट ऊपर से लेकर कैरियर में डाले गये।

"माध्यम होप की चालाकी"

होप ने "कैरियर" लेकर प्राइस से कहा कि बाकी प्लेटों को बांध लेवें—इसी बीच में प्राइस ने देखा कि माध्यम होप ने बिना कुछ कहे सुने उसको अपने कोट की बाईं जेब में डाल लिया और अपने पास का दूसरा कैरियर वहाँ रख दिया—पहले कैरियर पर प्राइस ने सुई आदि की भांति किसी (Pricking instrument) से कुछ निशान भी कर दिया था, जिसका हाल होप भी नहीं जानता था—इसके बाद प्राइस और होप दोनों अन्धगृह से निकले और प्लेटों के व्यक्त करने पर दो फ़ोटो खींचे हुये दिखाई दिये—एक तो केवल प्राइस का था। दूसरे फ़ोटो में प्राइस के सिवा उस के कन्धे की ओर देखती हुई, एक स्त्री का चेहरा था—दोनों

* The case for spirit Photography p. 36-38.

प्लेटों को लेकर प्राइस अपने संघ को लौट गये और देखने से वहाँ साफ़ मालूम हो गया कि प्लेट और कैरियर दोनों बदले हुये थे, न प्लेट पर एक्सरेज़ का चिन्ह था और न कैरियर पर प्राइस का किया हुआ निशान था। प्लेट के रंग और मोटाई में भी अन्तर था— इस परीक्षण से प्राइस और उनके संघ ने उपर्युक्त परिणाम निकाला था कि माध्यम लोग चालाकी से पैसा कमाते हैं और यह रूहों के फ़ोटो लेने आदि की बात सर्वथा मिथ्या है।

इस परीक्षण में प्लेट बदलने की बात, होप के पक्षपाती डोइल को भी स्वीकार करनी पड़ी है।*

संघ का यह भी कथन है कि उपर्युक्त परीक्षण के बाद प्लेटों में से एक प्लेट (एक्सरेज़ के चिन्ह वाले)

* डोइल ने लिखा है:—This statement (of changing plates) holds good. The plates have been examined and compared, and those who desired to guard the interests of Mr. Hope, agreed that the contention was right, and that there had actually been a substitution of plates at some time by some body. (The case for spirit Photography by Mr. Doyle p. 39.)

जो परीक्षण के समय अन्धगृह में बदल गये थे, संघ में अत्यन्त गुप्त रीति से किसी ने पहुँचा दिया था, जिसके लिये यह नहीं कहा जा सकता कि उसे कौन लाया और किस प्रकार वह प्राप्त किया गया—डोइल ने इस कथन को भी "होप" के विरुद्ध ठहराया है।*

इस परीक्षण के द्वारा प्लेट और कैरियर के बदले जाने की बात खुल जाने से एक महाशय डिंगवाल (Mr. Dingwall) ने भी सन् १६२८ ई० के मई मास में, होप से परीक्षण करने का समय नियत करने के लिये लिखा, परन्तु होप ने परीक्षण करने कराने से इन्कार कर दिया था§—तब उपर्युक्त परीक्षण का विवरण उपर्युक्त साइकिक संघ की कार्य्यवाही में सम्मिलित करके प्रकाशित कर दिया गया।

माध्यम होप के लिए यह भी कहा जाता है कि वह अन्धगृह में बराबर बेचैनी के साथ इधर उधर दौड़ धूप में व्यग्र रहा करता है—उसकी यह बात भी सन्देह योग्य बतलाई जाती है और कहा जाता है कि माध्यम को

*The case for spirit photography by Mr. Doyle p. 41.

§The case for spirit photography by Mr. Doyle p. 44.

अन्धगृह में क्यों जाना चाहिए। सब काम परीक्षणकर्त्ता द्वारा ही क्यों नही कराए जाते ? यह तो हुई एक माध्यम होप की बात अब दूसरी माध्यमा देवी डीन (Mrs. Deane) की बात सुनिए-यह देवी जो खुले तौर से प्लेटों का परीक्षण दिवस से कुछ दिन पहले अपने पास मँगवा लेती है—पीछे से अदलने बदलने का झगड़ा ही नहीं रखती और कहती है कि प्लेटों को वे चार पांच दिन अपने पास रख कर उन्हें आकर्षण शक्तियुक्त (Magnetising) कर देती हैं†—इसका परिणाम यह है कि परीक्षण करने वाले सन्तुष्ट नहीं होते हैं और समझने लगते हैं कि इस फोटोग्राफी में कुछ चालाकी ज़रूर होती है।

"दूसरी माध्यमा डीन का हाल"

तीसरे माध्यम वीर्न कोम्बे (Mr. Vearn Combe) महाशय एक साधारण फ़ोटोग्राफ़र से रूहानी फ़ोटोग्राफ़र बने हैं—डोइल का कहना है कि उसने दोबार इनके द्वारा परीक्षण किए,※ परन्तु दोनों बार

'तीसरे माध्यम वीर्न कोम्बे का हाल'

†The case for spirit photography p. 54.

※The case for spirit photography p. 58 & 59.

परीक्षण असफल हुए—एक परीक्षण की बात उसने इस प्रकार लिखी है—

एक चिट्ठी को लिफ़ाफ़े में बन्द करके मैं (Doyle) ने वीर्न कोम्बे के पास इसलिए भेजी कि पत्र का फ़ोटो लेवे परन्तु पत्र का फ़ोटो आने की जगह छै सात चेहरों का फ़ोटो खिंच गया—यही हाल दूसरे परीक्षण में भी हुआ—वीर्न कोम्बे की चालाकी का हाल एक बार इस प्रकार मालूम हुआ कि कतिपय सज्जनों ने एक मुहर किया हुआ पैकेट वीर्न कोम्बे के पास भेजा कि जो कुछ वह उस के सम्बन्ध में कर सकता है, करे—परीक्षण के बाद पैकेट परिणाम के साथ वीर्न कोम्बे ने उन सज्जनों के पास लौटा दिया—पैकेट खोलने और देखने के बाद उन लोगों ने घोषणा की, कि पैकेट में कुछ अदल बदल कर दिया गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि वीर्न कोम्बे की मान हानि हुई और खास सूरतों के सिवा उस ने रूहों के फ़ोटो लेने के परीक्षण सर्वसाधारण के सामने करने छोड़ दिए। *

"रूह की फ़ोटो लेने इन परीक्षणों और माध्यमों की चालाकियों पर दृष्टि डालने से प्रत्येक समझदार

*The case for the spirit of the photography P. 57.

की बात मिथ्या" आदमी इसी नतीजे पर पहुंचता कि रूह के फ़ोटो लेने की बात सर्वथा मिथ्या है—इसी परिणाम पर स्वयं लंडन के साइकिक संघ को पहुँचना पड़ा, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है—इसके सिवा फ़ोटो स्थूल शरीर का खिंचा करता है, जब रूहें स्थूल शरीर रहित होती हैं, जैसा कि रूहों के व्यवसायी कहा करते हैं, तो फिर फ़ोटो किस चीज़ का खिंच सकता है?—समझदार आदमियों को इसका भी विचार करना चाहिए। रूहों के बुलाने

'रूहानी इलाज' आदि में जो छल कपट किए जाते हैं उनका अनुकरण करते हुए एक रूहानी चिकित्सा की भी ईजाद कर डाली गई—यह चिकित्सा सन् १९२६ ई० में प्रयाग में की गई थी—चिकित्सा करने वाले एक गृहस्थ युगल थे—रोगी को यकृत के ठीक काम न करने की शिकायत थी—चिकित्सकों ने अनेक प्रकार पूजा की और हवन किया और प्रत्येक पूजा आदि के अवसर पर भारी भेंट, नक़द रुपया, सोना चांदी और रेशमी वस्त्रों के रूप में ली जाती थीं—इतनी मूल्यवान चिकित्सा होने पर भी जिसका बहुत ढिंढोरा पीटा गया था, रोगी को न तो चिकित्सा काल में और न ही उसके बाद कुछ लाभ

हुआ । हां चिकित्सकों की अवश्य पौ बारह हो गईं ।†
रूहों के नाम पर तरह-तरह से ठगी की जा रही है ।

— —

तीसरा परिच्छेद

एक चित्त के दूसरे चित्त पर, उन साधनों से, जिन का ज्ञान इस समय तक विज्ञान को ही है, कार्य्य करने को "परचित्त" 'परचित्तज्ञान' (Telepathy) कहते हैं ।❀ माइर्स की सम्मति है कि मानुषिक मस्तिष्क का बड़ा भाग अप्रकाशित है और यह अप्रकाशित भाग न केवल अपनी किन्तु पूर्वजन्मों की स्मृतियों का पुञ्ज है । इसी को उस ने उत्कृष्ट चेतना का नाम दिया है । माइर्स का यह वाद सेमुयेल बटलर (Samuel Butler) के 'अज्ञात स्मृतिवाद' से मिलता जुलता है ।

माइर्स ने इस वाद का विवरण इस प्रकार दिया है ।❀"वर्षों से यह बात अधिक और अधिक

---

† The Daily Leader Allahabad Date. 7-9-1926

❀ अर्थात् दो जीवित पुरुषों के चित्त में बिना किसी बाह्य और ज्ञात साधन के विचार परिवर्तन की विधि परचित्तज्ञान (Telepathy) कहलाती है ।

❀Human personality by Mayers Vol, I p. 16

'माइर्स की मात्रा में सोची और समझी जाती रही है सम्मति' कि किस प्रकार एक व्यक्ति का जीवन पूर्वजों के अनुभवों का अज्ञात परिवर्तन युक्त, विषम रूप है। जन्म से लेकर मरण पर्य्यन्त रंग रूप, कार्य्य और प्रकृति आदि में हम उन्नत जीवनों का जो पृथ्वी पर करोड़ों वर्ष से प्रादुर्भूत होते रहे हैं, रूपान्तर हैं। निरन्तर विस्तृत परिस्थिति के साथ सम्बन्धित होने से क्रमशः चेतना का द्वार अपना स्थान छोड़ता सा गया। जिस का प्रभाव यह हुआ कि चेतना की वह धारा जो एक बार हमारी सत्ता के मुख्य भाग में प्रवाहित होती थी, अधिकतया बन्दसी हो गई। हमारी चेतना विकास के एक दर्जे पर पहुँचे हुये असार (संसार) समुद्र में एक लहर के सदृश है। और लहर के सदृश वह न केवल बाह्य सत्ता रखती है, किन्तु अनेक तहों वाली भी है। हमारा आत्म संयोग न केवल सामयिक संघात है, किन्तु स्थिर भी है और चिरकालीन अनियमित विकास का परिणाम है। और अब तक भिन्न २ अवयवों के सीमित श्रम से युक्त हैं।"

मस्तिष्क का ठीक ज्ञान न होने से मस्तिष्क के नाम अथवा काम से सम्बन्धित जो बात भी कही जाती है, कोई दूसरा पुरुष जो उस बात को न भी मानता हो

निश्चित रीति से उसका प्रतिवाद नहीं कर सकता। यही हेतु है, जिससे परचित्त ज्ञान सम्बन्धी विश्वास पश्चिम में बढ़ रहा है। इस विषय से सम्बन्धित अनेक पुस्तक, जिनमें परचित्त ज्ञान के परीक्षणों का उल्लेख है, प्रकाशित हो चुके हैं। उन्ही के आधार पर दो एक परक्षण यहां लिखे जाते हैं। बैरेट की पुस्तक* में एक घटना जो इस वाद को पोषक है, अंकित है, और वह इस प्रकार है:—

'एक उदाहरण'

"फरवरी १८६१ ई० में एक अमेरिकन कृषक, घर से १०० मील की दूरी पर, "डूबक" नाम वाले नगर में, अचानक मर गया। पुराने वस्त्र जो पहन रहा था, वहीं फेंक कर उसका पुत्र शव को घर ले आया। अपने पिता का दुःखदायी मृत्यु समाचार सुनकर उस की पुत्री वेहोश हो गई, और कई घण्टे उसी अवस्था में पड़ी रही। जब उसे सुध हुई, तो उसने कहा—"कहां हैं पिताके वस्त्र"? वे अभी मेरे पास आये थे। सफेद कुर्ती और अन्य काले वस्त्र और सैटिन के सलीपर पहने हुये थे। उन्होंने मुझसे कहा कि घर छोड़ने के बाद बिलों की एक लम्बी सूची तय्यार करके उन्हों ने जेब में रखली थी जो अपने खाकी कुर्ती

*Psychical Research by Prof. Barret p. 130.

के भीतर लाल कपड़े के टुकड़े से सिली थी, और रुपया भी उसी में है, दफ़न करते समय जो वस्त्र शव (लाश) को पहनाये गये थे, वे वही थे, जिनका विवरण लड़की ने दिया था। और लड़की को इन वस्त्रों के पहनाने का कुछ भी ज्ञान न था। इस के सिवा कुर्ते के भीतर वाली जेब और रुपयों का हाल उसे और न अन्य किसी को मालूम था। लड़की को सन्तुष्ट करने के लिये उसका भाई "डूबक" गया, जहां उसका पिता मरा था। वहां उसने पुराने वस्त्र पाये, जो एक छप्पर में रक्खे थे। कुर्ते की भीतरी जेब में वह लम्बी सूची भी बिलों की मिली, जो ३५ डालर की थी, और उसी प्रकार लाल कपड़े के टुकड़े से सिली थी, जैसा लड़की ने बतलाया था। जेब के टांके बड़े और अनियमता से लगे हुये थे, जैसे किसी पुरुष ने सिये हों"। प्रोफेसर बैरेट ने इस घटना के आधार पर, "परचित्त ज्ञान" की सत्यता पर विश्वास किया था। माइर्स ने भी इस घटना का सविवरण उल्लेख करते हुये इस वाद की पुष्टि की है* एक दूसरे परीक्षण का भी उल्लेख किया जाता है। यह परीक्षण सर आलिवर लाज ने किया था और उन्हों ने

* Human personality vol. 11 d. 39 by Mayers.

ही इसे अपने एक पुस्तक में अंकित किया है। परीक्षण का विवरण इस प्रकार है:—

"एक और परीक्षण"

दो पुरुष अपने विचार, एक तीसरे पुरुष में जिसकी आंखें अच्छी तरह कपड़े से बांध दी गई थीं, पहुँचाने के लिये बैठे। एक मोटे कागज़ की एक ओर एक शक्ल वर्गाकार इस प्रकार की बना दी गई थी और कागज़ की दूसरी ओर दो रेखायें—इस प्रकार खींच दी गई थीं +। वे दोनों पुरुष एक मेज़ पर आमने सामने बठे और दोनों के बीच में वह कागज इस प्रकार रक्खा गया था कि एक पुरुष अपने ओर वाले चित्र को और दूसरा अपने ओर वाले चित्र को देखता रहे। परन्तु उन दोनों को भी यह जानने का अवसर नहीं दिया गया था कि कागज़ की दूसरी ओर क्या है। तीसरे पुरुष को जो "ग्रहण क्षम" था, और जिसकी आखों से पट्टी बँधी थी, वहीं मेज़ के पास बिठलाया गया और तीनों के बीच में कोई दो फुट का खुला अन्तर रक्खा गया था। दोनों पुरुष अपने सामने के चित्रों को संलग्नता के साथ इस विचार से देखने

† The survival of man by Sir Oliver Lodge p. 28-29.

लगे कि उन्हें "ग्रहणक्षम" के हृदय में चित्रित करदें। थोड़ी देर के बाद उस "ग्रहणक्षम" ने इस प्रकार कहना शुरू किया—

"कुछ हिल रहा है और मैं एक चीज़ को ऊपर और दूसरी को नीचे देख रहा हूँ। साफ़ साफ़ दोनों को नहीं देख सकता" तब वह कागज़ जिस पर चित्र खिंचे थे, छिपा दिया गया और "ग्रहण क्षम" की आँखों में पट्टी खोल कर कहा गया कि जो चीजें उसके विचार में आई थीं, उन्हें कागज़ पर लिख देवे। उसने एक चित्र इस प्रकार का खींच दिया लाज का कथन है कि यह परीक्षण अनेक पुरुष की उपस्थिति में किया गया था। उन पुरुषों में कुछ एक वैज्ञानिक भी थे। और यह कि परीक्षण ने सफलता से सिद्ध कर दिया कि एक ही समय में न केवल एक किन्तु दो पुरुष के विचार भी एक तीसरे पुरुष में डाले जा सकते हैं। सर आलिवर-लाज ने यह भी लिखा है कि वैज्ञानिक होने की हैसियत से वे इस परचित्त ज्ञान का कोई हेतु नहीं दे सकते सम्भव है कि इसका सम्बन्ध (ईथर) आकाश से हो। यदि यह सिद्ध हो गया, तो अवश्य यह वाद भौतिक विज्ञान की सीमा में आ जावेगा। लाज ने इसके
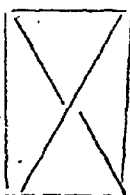
"वैज्ञानिकहेतु" वैज्ञानिक हेतु देने का यत्न किया है, और वह इस प्रकार है * । "एक दर्पण को एक अक्षाग्र (धुर) में इस प्रकार जड़दो कि जिससे वह कुछ हिल जुल सके। उससे कुछ दूरी पर फ़ोटोग्राफ़ी का कागज और उसी का मध्योन्नत काच रक्खो यदि सूर्य्य की किरणें आइने पर पड़ेंगी और कागज़ आदि ..व व्यवस्था के साथ रक्खे हुये होंगे, तो परिणाम यह होगा कि उस कागज पर एक रेखा खिंच जायगी और इसी प्रकार प्रत्येक खटके से जो दर्पण को दिया जायेगा रेखा खिंचती जायगी। सूर्य्य और उस दर्पण के मध्य में कोई तार अथवा अन्य इसी प्रकार का कोई प्राकृतिक माध्यम, सूर्य की किरणों और आकाश (ईथर) के सिवाय, नहीं है। इसी प्रकार दो मस्तिष्कों में से जिन में आनुरूप्य सम्बन्ध हो और जो एक दूसरे से पृथक् हो, एक को उत्तेजना देने से दूसरा प्रभावित होगा" आनुरूप्य सम्बन्ध का तात्पर्य भौतिक विज्ञान में लाज के कथनानुसार, यह है कि रेल के स्टेशनों पर सिगनल देने के लिये जो खम्भों में हाथ लगे होते हैं और वहीं पर लगे हुये एक दूसरे यन्त्र के

* Survival of man by Sir Oliver Lodge p. 61-64.

हिलाने से जिस प्रकार ऊपर या नीचे करने के लिये उसे हिलाते हैं, इसी प्रकार का प्रभाव यह यन्त्र की गति उस हत्थे में उत्पन्न कर देती है और उसी प्रभाव के अनुसार वह नीचे या ऊपर हो जाता है, तो उस यन्त्र और हाथ में समझा जायेगा कि आनुरूप्य सम्बन्ध है, यह हिलाने का खटका जो उस यन्त्र से हत्थे तक पहुँचता है और जिस का माध्यम लोहे की श्रृंखला अथवा कोई रस्सी होती है, एक सैकिंड में तीन मील की चाल से जाता है। सर आलिवर ने अपनी पुस्तक में यह भी लिखा है* कि इंगलैंड और हिन्दुस्तान का अन्तर आनुरूप्य सम्बन्ध में बाधक नहीं हो सकता। जिस प्रकार इंगलैंड में तार की मशीन खटखटाने से तिहरान की मशीन प्रभावित होकर वैसा ही खटका पैदा कर देती है, इसी प्रकार मानसिक विचार परिवर्तन इंगलैंड और हिन्दुस्तान के बीच ऐसे साधनों से, हो सकता है, जो इस समय तक ज्ञात नहीं हुए हैं।"

परचित्त ज्ञान और परोक्ष दर्शन(Clair voyance)

"परचित्त ज्ञान की वास्तविकता"

यही दो शक्तियां हैं, जिनके स्वीकार करने में कुछ भी हिचिर मिचिर

---

* Survival of mau by Sir Oliver Lodge p. 70 and 71.

करने की ज़रूरत नहीं है और रूहों के बुलाने का सभी मामला इन के समक्ष लेने से समाप्त हो जाता है-संघ का समय समाप्त हो चुका था इस लिये आत्मवेता ऋषि ने संघ का कार्य्य समाप्त करते हुए कहा कि अभी कुछ बातें इस विषय में बाक़ी रह गई हैं वे अगले संघ में कही जावेंगी—संघ में उपस्थित नर नारी यह सोचते हुए चलने लगे कि जगत रचयिता ने मनुष्यों के भीतर कैसी-कैसी अपूर्व शक्तियां भरती हैं, परन्तु दुर्भाग्य वाले हैं हम सब कि उनसे न काम लेते न उनके जानने की चेष्टा करते हैं और अनेक भ्रम जालों में फँस रहे हैं—उन्हीं नर नारियों में से एक पुरुष ने उद्बोधनार्थ एक भजन गाना शुरू किया और सभी शान्ति के साथ उसे सुनने लगेः—

भजन १

अब तो अबुध आलसी जागो ।। टेक ।।
उदित भयो विज्ञान—दिवाकर मन्द मोह त्यागो ।
डूब गयो दुर्जन तारागण वृन्द विषय रस पागो ।।
अब तो अबुध आलसी जागो ।। १ ।।
साहस सर में कर्म कमल वन अब फ़िर भूलन लागो ।
प्रेम—पराग हेतु सज्जन कुल भृङ्ग—यूथ—अनुरागो ।।

अब तो अबुध आलसी जागो ॥ २ ॥

सुख सम्पत्ति चकवा चकई ने मिल त्रियोग दुःख त्यागो।
जाय पड़ो आलस उजाड़ में दैव उलूक अभागो ॥
अबतो अबुध आलसी जागो ॥ ३ ॥

सकल कला कौशल चिड़ियों ने राग "कर्ण" प्रियरागो।
हिल मिल गैल गहो उद्यम की पीछे तको न आगे ॥
अब तो अबुध आलसी जागो ॥ ४ ॥

———

भजन २

उठरी बाले! अब तो जाग।
भोर भई है, निद्रा त्याग ॥
उठरी सजनी! बीती रजनी।
बोल रहे चिड़िया औ काग ॥
निकली किरणें सुरजन जागे।
जाग उठा तव सुप्त सुहाग ॥
प्रातःकाल भजनकर प्रभु का।
जिससे हो प्रिय से अनुराग ॥

तीसरा परिच्छेद

दसवां संघ

रूहों का बुलाना

"प्रारम्भ" संघ का समय निकट भविष्यत् ही में आने वाला है। इस लिये अनेक नर नारी संघ में जाने के लिये सन्नद्ध हैं—उनके हृदयों में एक विलक्षण भाव उत्पन्न होरहा है। जब वे अपनी ओर देखते हैं, तो अपने को अनेक चिन्ताओं की चपेटों से कम्पित, विवेक शून्य, कर्तव्य विमूढ़-सा पाते हैं, रोमांचकारी कुप्रथाओं के निन्दनीय आतंक वश अनेक यातनाएँ भोगते हुए देखते हैं, हृदय उद्वेग से विह्वल है और दुःखमय आंतरिक क्षोभ से व्यथित है, सोचते हैं कि कब और किस प्रकार यह धर्म ध्वंसिनी मोह निद्रा विदूरित होगी और कब उनके हृदय, धर्म भावापन्न होंगे और कब आत्मत्याग पूर्वक निर्भीक चित्त से सदाचार के सुपथ में पदविन्यास कर सकेंगे, परन्तु जब संघ के विलक्षण प्रभाव का स्मरण करते हैं कि अनेक माई के लाल अपनी कमनीय आलोक माला के विकीर्ण करने के लिये, उसी के अलौकिक

प्रभाव से, प्रभावित होकर अग्रसर हो रहे हैं और अनेक अज्ञानान्धकार शमन करने में समर्थ हो चुके हैं और उस के साथ ही जब ऋषि आत्मवेत्ता का स्मरण करते हैं कि उनकी अनुपम शिष्टता, मितभाषिता, गम्भीरता, सुशील-ता और मिष्ट भाषण किस प्रकार चिर संचिर कुसंस्कारों के दूर करने के लिये तीव्र शस्त्र का काम कर रहे हैं और किस प्रकार उनका अलौकिक स्नेह सम्पन्न हृदय, उच्च और उदारता व्यंजक ललाट, गम्भीर और उज्वल मुख मंडल अगाध शोक सागर में पतित पुरुषों को भी, सुख और शान्ति के कल्याण मार्ग का पथिक बन रहा है, तो हृदय आशा और उत्साह से पूरित हो उठता है, इस प्रकार के दोरुखे विचारों की लहरों में बहते हुए नर नारी वेग के साथ संघ की ओर चले जा रहे हैं— आश्रम की पवित्र भूमि आगई—देखते ही देखते ऋषि आत्मवेत्ता संघ में उपस्थित होकर वे और उनके साथ ही सभी उपस्थित स्त्री पुरुष यथा स्थान बैठ गये।

आत्मवेत्ता—रूहों के बुलाने के सम्बन्ध में जो प्रयोग किये जाया करते हैं, उनका वर्णन आवश्यक आ-लोचना के साथ किया जा चुका है—दो बातों का व्याख्यान करके तब शङ्काओं के करने का अवसर दिया जावेगा।

"रूहों के बुलाने और सन्देश लेने के लिये विश्वास क्यों आवश्यक है"

उनमें से पहली बात यह है कि रूह बुलाने का प्रयोग करने वाले कहा करते हैं कि यदि कहीं उनके आने और सन्देश देने में विश्वास न हो तो रूहें बुलाने से भी न आती और न सन्देश देती हैं—कल्पना करो—एक संघ रूहों के बुलाने के लिये लगा है—कार्य प्रारम्भ होने से पहले यदि कोई सन्देह वादी बन कर निराशा के साथ कह दे कि "यह सदैव होता है कि जब मैं मौजूद होता हूँ, तो कोई रूह आती है और न सन्देश देती है"—तो बहुत कम सम्भावना बाकी रह जायगी कि रूह आवे—अथवा अमल करने वाले, जो प्लेनचिट या मेज पर हाथ रख कर बैठा करते हैं जो रूहों को बुलाने में पूरा विश्वास रखते हैं, रूहों के बुलाने में सफलता प्राप्त कर सकें—विचारणीय यह है कि विश्वास न होने पर रूहों का आना क्यों बन्द हो जाता है ? जब रूहों को, उनके बुलाने वालों के कथानुसार, मेज के हिला देन की ताकत है—प्लेनचिट को गति में ला देने की योग्यता है—हजारों मील सफर कर लेने की शक्ति है और इसी प्रकार अन्य भी अनेक प्रकार के काम कर सकने का सामर्थ्य है, तो इसका कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि एक अविश्वासी के सम्मुख उनकी

सारी शक्तियां क्यों रुखसत हो जावें ? उनको चाहिये तो यह था कि अविश्वासियों को विश्वासी बना देने के लिये और अधिक अपनी शक्ति और सामर्थ्य प्रकट करतीं परन्तु बात होती इसके सर्वथा विपरीत है—हडसन ने खूब लिखा है कि नैपोलियन जब ज़िन्दा था, तो सारा योरौप उसका नाम सुन कर ही थर २ कांपने लगता था, वह योरोप के राजाओं को कठपुतली की तरह नाच नचाया करता था। परन्तु जब मर गया, तो उसकी रूह का यह हाल कि उसके सामने आने तक से हिचकिचाती है जिसे रूह के बुलाने आदि का विश्वास नहीं है❋।

"इसका असली कारण"

इसका असली कारण यह है कि रूह तो कहीं से न आती है और न जाती है—जो कुछ कृत्य हुआ करते हैं, वे अपने ही लघु मस्तिष्क (Subjective mind) के कार्य होते हैं और वह स्वयं प्रस्ताव (Auto-Suggestion) से प्रभावित किया जाता है। परन्तु मनुष्य को यदि सन्देह हो जैसा कि उपर्युक्त वाक्य के उच्चारण से हो जाया करता है तो स्वयं प्रस्ताव से प्रभावित होने की अवस्था उत्पन्न ही नहीं हो सकती और इसी लिये कोई

❋ The Law of psychic phenomena by Hudson P. 209 and 210

कार्य भी नहीं हो सकता। इस से स्पष्ट होता है कि यह रूहों के बुलाने आदि की बात सर्वथा मिथ्या है।

दूसरी जिसकी इस समय चरचा करनी है यह है कि रूहों के बुलाने के लिये परीक्षण, परीक्षण की हद से निकल कर तमाशा दिखला कर धन कमाने के संघों में परिवर्तन हो गये हैं इस लिये इसका स्वभाविक परिणाम यह हुआ कि इन संघों में छल कपट का समावेश होगया—इसका कुछ ज़िक्र रूहों के फोटो लेने के प्रकरण में किया जा चुका है और कुछ यहां किया जाता है:—

"रूहों के बुलाने आदि में छल कपट का बाहुल्य"

(१) मैसके लाइन (Maskelyne) और डेवेन्ट (Devant) दो विद्वानों ने जिन्हें रूह बुलाने के एक संघ में अनेक बातें दिखलाई गई थीं, उसी संघ में उन्होंने उन सब बातों को दुहरा कर दिखला दिया और प्रकट कर दिया कि इन बातों में किसी या किन्हीं रूहों का कुछ भी दखल नहीं है *।

(२) डुकेल एक विद्वान ने एक रूह बुलाने वाले पेशेवर इन्द्रजाली का उदाहरण दिया है, जिसनें १८७७

*The Belief in Personal Immortality by E. S. P. Hayness. (Chapter on spiritualism)

ई० में बरलिन के एक संघ में यह स्पष्ट कह दिया था कि रूह बुलाने के संघों में जो घटनाएँ घटित होती हैं, उन की वह सकारण व्याख्या नहीं कर सकता† ।

(३) स्लेड और होम (Slade and Home) ने जो रूह बुलाने का अमल किया करते थे—इन संघों में जो छल और कपट किये, प्रायः सब प्रकार प्रकट होगये और उसका परिणाम यह हुआ कि इन संघों से लोगों को नफ़रत होने लगी§ ।

नोट—इन लोगों के अनेक एजेन्ट थे जो, उन स्थानों की, जहां संघ होने वाले हुआ करते थे,—एक एक घर का सब हाल जानकर इन्हें बतला दिया करते थे—इस काम के लिये लोगों ने एक भाषा भी गढ़ली थी, जिसे कोई दूसरा, जो इनकी गुट्ट से बाहर हो, नहीं समझ सकता था ।

(४) एक बात जो इन संघोंमें आम तौर से मेडियम किया करते हैं, और जो सबको सन्देह में डालने वाली हुआ करती है, यह है कि ये रूह बुलाने के संघ प्रायः

---

†The Belief in Personal Immortality by E. S. P. Hayness. (Chapter on spiritualism)

§The Belief in Personal Immortality by E. S. P. Hayness (Chapter on spiritualism).

बिलकुल अँधेरे या धुंधले प्रकाश में किये जाया करते हैं और मेडियम को परदे में इधर उधर घुमाना पड़ता है, जबकि यह बात भली भांति जानी हुई रहती है कि मेज़ के चारों ओर जो आदमी खड़े किये जाते हैं, उनको एक दूसरे का हाथ छोड़ने और मेज़ के पास से हटने की इजाज़त नहीं होती।

(५) डाक्टर एलफ्रेड रसल वालेस रूह बुलाने के समर्थक थे, तो भी उन्होंने लिखा है कि एक संध में उन्होंने एक बुलाई हुई स्त्री की रूह के कान, यह देखने के लिए छूना चाहा कि बालियां पहनने के लिये छिद्र हैं या नहीं, परन्तु इस और ऐसे ही अनेक परीक्षणों में देखा गया है कि कभी ऐसा अवसर नहीं आया, जिसमें आई हुई रूह पकड़ी गई हो। हाँ यह तो अनेक बार हुआ कि रूह के बदले मेडियम का शरीर हाथ में आगया*।

(६) पाडमोर ने लिखा है कि इन रूह बुलाने वालों का एक बड़ा संगठन होता है, जिसका उद्देश्य यह होता है कि आवश्यक सूचनायें प्राप्त करते रहें और इस प्रकार एकत्रित सूचनाओं से संगठन के समस्त

*My Life by Dr. A. R. Wallaco p. 347 (vol. 11).

सदस्यों को वाक़िफ़ करते रहें$ ।

(७) रूह के बुलाने का अमल करने वाली दो बहनों के सम्बन्ध में जो किसी फ़ोक्स (Fox) नामक पुरुष की लड़कियां थीं, छल कपट का सन्देह हुआ । अन्त में दो भिन्न २ अवसरों पर दोनों ने अपनी चालाकी स्वीकार की और बतलाया कि वे अपने ही घुटने और उंगलियां चटख़ाकर आवाज़ पैदा करदिया करती थीं (Their rappings were produced by Cracking the knee and toe joints)❋

(८) हिल (J. A. Hill) एक विद्वान् ने लिखा है कि रूह बुलाने वालों में इतना छल कपट (Fraud) और इतनी अधिक अन्ध विश्वासता (Excessive Credulity) होती है कि जिससे मुझे इतनी घृणा है कि मैं इनके साथ शरीक भी नहीं हो सकता ।†

(९) फिर उसी विद्वान् (हिल) ने एक दूसरी जगह लिखा है कि "रूह बुलाने के सम्बन्ध में जो प्रमाण

$ Modern Spiritism by Padmore Vol. 11 p. 339 (foot note)

❋ Spiritualism by J. A. Hill p. 15.

† Spiritualism by J. A. Hill p. 6.

दिये जाते हैं, वे संतोष के योग्य नहीं हैं उसने फिर यह लिखते हुए कि ये सब काम धोखा देने के लिये किये जाते हैं और उदाहरण में ३ मेडियमों का ज़िक्र किया है, जो थोड़े ही समय में एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा छल (Trick) करते हुए पकड़े गये§ ।

(१०) डाक्टर बरेमवेल 'हिपनाटइज़्म' के प्रसिद्ध प्रयोक्ता का कथन है कि सकते या बेहोशी की हालत में केवल लघु मस्तिष्क (subconsciousness or subjective mind) काम करता है और संलाप आदि का उत्तरदायित्व उस पर और केवल उसी पर है❋—

(११) फ्रैंक पोड़मोर ने भी बरेमवेल के प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण किया है और वे भी रूह बुलाने आदि के समस्त कार्य्य को लघु मस्तिष्क का ही समझते हैं:†—

(१२) एक विद्वान् मन्सटर वर्ग लिखते हैं कि रूहों के बुलाने आदि की बातें न तो ठीक हैं और न कभी ठीक होंगी और इस मामले में जितना ही वाद विवाद किया जाता है, उससे उतना ही यह मामला और खराब

§ Spiritualism by J. A. Hill p. 16.

❋ Master Workers by Harold Beglie P. 266.

† Master Workers by Harold-Beglie P. 261.

ठहरता है$:—

(१३) एक और विद्वान् ने लिखा है कि ये रूहों का बुलाना आदि सब चालाकी है—यदि मरे हुए पुरुषों की रूहें ज़िन्दा आदमियों से बातचीत कर सकती हैं, तो क्यों नहीं उन्हीं से साक्षात् बातचीत करतीं जो उनसे बात करना चाहते हैं—क्यों किसी माध्यम के द्वारा ही बात करती हैं—उसने यह भी लिखा है कि जनता इन रूह बुलाने वालों की बड़ी कृतज्ञ होगी यदि वे कोई ऐसी तजवीज़ निकालें जिसके द्वारा मृत पुरुषों की गवाही कमीशन द्वारा या खुली कचहरियों में होसका करे❋।

(१४) माध्यमों (Mediums) की धोखेबाज़ी और ऐसे संघों की कार्य्य प्रणाली पर दृष्टिपात करते हुए प्रोफेसर बैरेट कहते हैं कि अवमृत जीवों के सन्देश फीके पड़ रहे हैं और यह उत्साह जो पहले था, अब कहीं

$ "The facts, as they are claimed, do not exist, and never will exist, and no debate makes the situation better." (Psychology and life by Munsterberg P. 254.

❋ The belief in Personal Immortality by E. S. P. Hayness P. 109.

दिखाई नहीं देता§:—

(१५) अमरीका के वैज्ञानिक पत्र (Scientific American) ने सदैव इस (रूहों के बुलाने आदि के) वाद को झूठा बतलाया है।

(१६) लन्दन के अंग्रेज़ी त्रैमासिक "साइक" (Psyche) के अप्रैल १०२६ ई० के अङ्क में, लन्दन के प्रसिद्ध वैज्ञानिक "वारन जौय विन्टन" (Warren joy Vinton) ने रूह के बुलाने के १० प्रयोगों को, जो ३० जुलाई से १६ अगस्त तक किये गये थे, देखने के बाद अपनी सम्मति इस प्रकार लिखी है:—कोई सुयुक्तिक प्रमाण इस बात का नहीं है कि कोई अलौकिक कार्य्य इन (रूह बुलाने के) संघों में होता है—वस्तुतः मैंने कुछ अलौकिक-पन नहीं देखा—जो कृत्य इन संघों में (रूहों के नाम से) दिखाये जाते हैं, वे सभी पूर्णतया वैधिक साधनों से प्रकट किये जा सकते हैं। और मुझे विश्वास है, कि ऐसे ही साधनों से (इन संघों में भी) काम होता है × × × सभी कृत्य सुगम और मामूली थे और इन संघों में उतने ही अंधेरे और शोरोगुल से काम होता है जैसा कि पेशेवर इन्द्र जालिकों के खेलों में होता है—

§ Psychological Research by Prof. Barrt P. 245 and 246.

बल्कि इन इन्द्रजालिकों की अपेक्षा इन संघों में अधिक धोखे और छल से काम लिया जाता है ××× चौथे प्रयोग में मैंने स्वयं माध्यम को अपने हाथ छिपा कर छल करते हुए पकड़ा था ××× वे (माध्यम) स्वयं भी स्वीकार करते हैं, कि जब उनकी कड़ी देखभाल होती है तो उन्हें कुछ न कुछ छल करना ही पड़ता है ××× ये सब काम साधारण लोगों के ठगने के लिये होते हैं ×××

उपर्युक्त कथन के बाद इस प्रकरण को समाप्त करते हुए आत्मवेत्ता ऋषि ने कहा:—

आत्मवेत्ता—आवश्यकता नहीं कि इस सम्बन्ध में और अधिक बातें कही जावें—जो कहा जा चुका है, वह रूहों के बुलाने के संघों में माध्यम पुरुषों द्वारा जो छल और वंचकता की जाया करती है, उन पर प्रकाश डालने के लिये पर्य्याप्त है—मेडियम छल करते हुए संघों में उपस्थित सज्जनों द्वारा पकड़े जाते हैं और इतने अपमानित होते हैं कि किन्हीं ने तो यह (रूह के बुलाने आदि का) काम ही छोड़ दिया है, परन्तु फिर भी यह संघ बन्द क्यों नहीं हो जाते, इस का कारण है और पुष्ट कारण है और वह कारण यह है, कि यह संघ अब वैज्ञानिक परीक्षा की सीमा का उल्लंघन करके

धन कमाने के पेशों में परिवर्तित हो गये हैं—वे लोग जिन की जीविका इसी से चलती है, यदि इसे छोड़ देवें तो फिर खायें क्या ? इसीलिये ये संघ बन्द न हुये और न होने की आशा है:—

"छल कपट का पेशा क्यों किया जाता है"

लोकमणि—फिर लोग ऐसा पेशा करते ही क्यों हैं, जिस में उन्हें छल कपट करना पड़ता है:—

"इस के कारण"

आत्मवेत्ता—इसके दो कारण हैं:—(१) पश्चिमी सभ्यता का एक मुख्य अंग उपयोगिता वाद (Utilitarianism) है, जिसका भाव यह है, कि उपयोगिता की दृष्टि से प्रत्येक अनुचित्त से अनुचित काम करलेना भी जायज़ है उपयोगिता हो, तो रिश्वत देना जायज़ है। भूख से अगर आदमी मरता हो, तो चोरी करना जायज़ है*—मिल के, अधिकांश लोगों के अधिक से अधिक सुख (Greatest good of the greatest number) के नियमानुसार सिजविक ने निर्णय किया है कि छोटे लड़कों और पागलों को उत्तर देने के समय, इसी प्रकार बीमारों,

*"Thus to save a life, it may not ony be allowable but a duty." (Mills Utilitarianism Ch. V. page 95)

अपने शत्रुओं और चोरों को या अन्याय से प्रश्न करने वालों को उत्तर देते समय अथवा वकीलों को अपने व्यवसाय में झूंठ बोलना अनुचित नहीं है$—इत्यादि यहां तक कि ईसा के एक प्रतिष्ठित शिष्य "पाल" ने नये अहदनामे की एक पुस्तक में लिखा है कि यदि मेरे असत्य भाषण से प्रभु के सत्य की महिमा और बढ़ती है (अर्थात् ईसाई धर्म का अधिक प्रचार होता है), तो इससे मैं पापी क्यों कर हो सकता हूँ* जब उपयोगिता होने पर नीति आचार और धर्म प्रचार में भी झूंठ बोलना जायज़ है, तो धन कमाना भी तो उपयोगिता ही है, इसके लिये यदि झूंठ बोलना पड़े या छल कपट से काम लेना पड़े, तो फिर इसमें क्यों किसी को संकोच होना चाहिये? यदि रूह बुलाने का ढोंग रच लेने से धन मिल सकता है, तो फिर इसमें हिचर मिचर करने की कौनसी बात है?

दूसरा कारण यह है कि भारतवर्ष में अंग्रेजी पढ़े

$Sidgevick's methods of Ethics, Book III, Ch. XI, See, 6. p. 315-317 & 355 (7th Ed.)

* "For if the truth of God hath more abounded through my lie unto his glory, why yet am I also judged as a Sinner ?" (Romans 3.7.)

लिखे पुरुषों ने अपनी आजीविका पैदा करने का साधन नौकरी और वकालत बना रक्खा था, सो इन पेशों में अब उनकी खपत होने के लिये जगह बाक़ी नहीं रही, व्यवसाय या व्योपार करने का इन में साहस पैदा नहीं हुआ, फिर करें तो क्या करें—एक ग्रेजुएट को सारा जीवन व्यतीत करने पर भी सौ डेढ़ सौ रुपये से अधिक की आय, नौकरी करके नहीं होती, यही हालत वकालत के पेशों की है, वहां अब अधिक लोगों की खपत हो नहीं है—ऐसी हालत में यदि एक ग्रेजुएट, रूह बुलाने के पेशों में १५) प्रति संघ वसूल कर सके, तो वह तो समझेगा कि उसके हाथ, सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी, आगई—यदि एक भी संघ प्रति दिन हो गया तो १५) की दैनिक आय हो गई और ऐसे कार्य्यों में धन खर्च करने वाले, वेवकूफों की, किसी जगह भी कमी नहीं है। खासकर यह देश तो आज कल ऐसों की खान ही बन रहा है—फिर इसी पेशे को करके जीविका क्यों न उपलब्ध करनी चाहिए? यह प्रश्न है जो अनेक अंग्रेजी पढ़े लिखे बाबू लोगों के सामने आता है और उन में से कई इसे, इसीलिये स्वीकार कर लेते हैं। अधिकतर उन्हीं के कारण रूह बुलाने की चर्चा इधर उधर फैली हुई है। कुछ दिनों के बाद जब इस पेशे की चढ़ी हुई

कमान उतर जायगी और लोगों के लिये ये संघ रुचिकर न रहेंगे, तब इस पेशे का करना लोग स्वयमेव छोड़ देंगे।

ऋषि कुमार—प्रसिद्ध तो यह है कि किसी को सन्देश देने के लिये परलोक से उस की स्त्री आया करती है किसी को संदेश देने के लिए सर फ़ीरोज़शाह महता आते हैं, कोई स्वामी रामतीर्थ की रूह को बुलाता है, तो क्या ये बातें सब की सब मिथ्या हैं ?

"परलोक के सन्देश अपने ही विचारों का फल है"

आत्मवेत्ता—यह अच्छी तरह से समझाया जा चुका है कि ये जो सन्देश रूहों के नामों से आया करते हैं, अस्ल में ये अमल करने वालों के ही विचार और ज्ञान का परिणाम होते हैं। उदाहरण के लिये देखो, एक दक्षिणी जो पौराणिक मत रखता है, उसके पास जो सन्देश आते हैं, उनमें ज़िक्र होता है कि रविवार को ब्राह्मण को अन्न दान करे*, मृत्यु के समय उसके पास कृष्ण वर्ण के यमदूत आये और यमपुरी को ले गये, मार्ग में सब देवताओं की मूर्तियां दीखती थीं, एक नदी (वैतरणी) को

* सुभद्रा बी० डी० ऋषि कृत पृष्ठ २२।

पार करना पड़ता है§। परलोक में अन्न वस्त्र की जरूरत हुआ करती है (इसलिए मरे हुओं को अन्न वस्त्र देना चाहिए)† परलोक में आरती पूजा होती है, जप करना पड़ता है, दो घंटे पुराणों की कथा होती है, प्रातःकाल दूध पीता हूँ, वाहन पर बैठ कर दो कोस घूमने जाता हूँ, मन्दिर में जाता हूँ, तीनों काल की आरती कर के तब घर लौटता हूँ। त्रिकाल स्नान करता हूँ, एक पांव पर खड़ा रह कर तप करता हूँ, भोजन करके एक घण्टा सोता हूँ* मदिरा—व्यसनी किसी स्थूल शरीर में प्रवेश कर तृप्त होते (अर्थात् मदिरा पीते) हैं, हर एक व्यसनी (इसमें व्यभिचारादि सभी व्यसन सम्मिलित हैं) किसी स्थूल शरीर में प्रवेश कर अपनी इच्छा तृप्त कर लेता है, वृद्ध प्राणी की मृत्यु के उपरान्त "हरि हरि" करते हैं, श्राद्ध तर्पणादि क्रिया से हम (परलोकवासी) तृप्त होते हैं, ब्राह्मण के सिवा अन्य जाति के लोग उपरोक्त विधि नहीं करते, किन्तु ब्राह्मण को 'सीधा' सामान दान करते हैं, कोई द्रव्य भी दान करते हैं। मनुष्य पुनः वृक्ष वा पशु योनि में भी जन्म

§ बी० डी० ऋषि कृत सुभद्रा पृष्ठ ५१—५३।

† बी० डी० ऋषि कृत सुभद्रा पृष्ठ ५७।

* बी० डी० ऋषि कृत सुभद्रा पृष्ठ ५८—६१।

पाता है कैलाश (परलोक) को केवल शिव भक्त ही जाने पाते हैं, श्राद्धादि कर्मों के न करने से हम भूखे तो नहीं रहते, किन्तु श्राद्ध दिवस हमारे लिये महत्व का दिवस है, (परलोक में) कुमारियों के विवाह होते हैं, विधवाओं के नहीं, चित्रगुप्त उस (यमराज) का विश्वस्त शिष्य है, चित्रगुप्त डेढ़ दो करोड़ सेवकों का अधिकारी है, यमराज के पास एक लाख दूत हैं, चित्रगुप्त के सेवक आधी सृष्टि के लोगों के पाप पुण्य लिखते हैं, और आधी सृष्टि के वे (चित्रगुप्त) अकेले ही लिखा करते हैं, परन्तु अपने सेवकों के लेखे की जांच भी चित्रगुप्त को करनी पड़ती है, तब यह लेखा न्याय के लिये यमराज के पास जाता है और वे न्याय करते हैं, पाप क्षयार्थ "राम नाम" जपते हैं, विष्णु मन्दिर में दो सुन्दर मूर्तियां हैं, यहां (परलोक में) बद्रीनारायण का एक मन्दिर है* ।

इन सन्देशों पर ध्यान पूर्वक दृष्टि डालो, एक पुराणोक्त मतानुयायी जिन बातों को यहां मानता है, वही उसके लघुमस्तिष्क (चित्त) में स्मृति के रूप में रहती हैं और उसी स्मृति भंडार से स्वयं प्रस्ताव (Auto Suggestion) के प्रभावानुसार प्रकरण उप-

* बी० डी० ऋषि कृत सुभद्रा पृष्ठ ६८—७७ ।

स्थित होने पर रूहों के सन्देश के रूप में निकल आया करती हैं।

तर्क प्रिय—इन सन्देशों के अनुसार यदि सचमुच कोई परलोक है, तो यह निश्चित है कि वह केवल पुराणोक्त मतानुयायियों के लिये ही है, भला एक आर्य, मुसलमान या इसाई क्यों शिव या विष्णु के मंदिर में जाने लगे, क्यों वह पुराणों की कथा सुनने लगे, क्या मुसलमान या ईसाई जब परलोक में मरते हैं, तो वे भी "हरि हरि" ही कहा कहा करते हैं ?

नोट—इस पर सब हंस पड़े।

मेधावी—परलोक में भी ब्राह्मण और अब्राह्मण का भेद है—वहां विधवाओं के विवाह नहीं होते—क्या ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की रूह ने अपना विधवा विवाह का क़ानून वहाँ यमराज की कौन्सिल से पास नहीं कराया ?

नोट—फिर सब लोग हंस पड़े।

जोशी—चित्रगुप्त के डेढ़ दो करोड़ सेवक क्या कभी हड़ताल भी करते हैं ?

नोट—फिर सब लोग हंस पड़े।

प्रजाप्रिय—जब यमराज के पास केवल एक लाख दूत हैं और चित्रगुप्त के पास डेढ़ दो करोड़ सेवक, तो

समझ में नहीं आता, कि चित्रगुप्त चुपचाप क्यों बैठा है—क्यों वह रूस के ज़ार की तरह, यमराज को क़ैद करके साइबेरिया नहीं भेज देता और क्यों प्रजातन्त्री राज्य की स्थापना करके परलोक को उसके शासन से स्वतन्त्र नहीं कर लेता ?

नोट—फिर सब हंस पड़े ।

सोमदेव- "श्राद्धादि कर्मों के न करने से हम भूखे तो नहीं मरते" यह कह कर उस रूह ने, ऐसा प्रतीत होता है कि आर्य्य समाजियों की कुछ रियायत कर दी है ।

नोट—इस पर भी सब हंस पड़े ।

विज्ञानप्रिय—सीज़र* लोम्बार्सो ने बतलाया है—

"रूहों के शरीर" इस परलोक में रहने वाली रूहों के शरीर ईथर के होते हैं और १२०० मील एक घंटे में चल सकते हैं†—तो फिर दो कोस चलने के लिए ये रूहें किस लिये वाहन पर सवार होती हैं ? और क्या इनके वाहनों के भी शरीर ईथर ही के होते हैं ?

* Biology of the Spirit by Cesar Lombeorso Page 3—9.

† Raymond by Sir Oliver Ladge Ch, on spiritualism.

आत्मवेत्ता—सर अलिवरलाज ने, जो रूहों के बुलाने आदि में विश्वास रखने वाले वैज्ञानिक समझे जाते हैं। ईथर के शरीर होने की सम्भावना से इनकार किया है, उन्होंने यह भी लिखा है कि यदि ईथर के शरीरो की कल्पना भी कर ली जावे, तो उन्हें कोई देख नहीं सकता—इसी लिए इस तथा परलोक सम्बन्धी अन्य सभी बातों को उन्होंने "असमर्थनीय बातें" (Unverifyable) कहा है—जिस प्रकार की बात रूहों के शरीर के सम्बन्ध में लोमब्रासों ने कही है—एडवर्ड कारपेन्टर ने कुछ उस से भी बढ़ कर कह डाली है—वह कहता है कि मानुषी जीव का तौल एक औंस का कोई भाग है, परन्तु उसका रूप, उसकी आकृति, उसकी लम्बाई और चौड़ाई मनुष्य शरीर के सदृश है और जब वह पूर्णता को प्राप्त कर लेगा, तो उसकी ऊँचाई ३५ से ३८ मील तक* होगी†—पर बात यह है कि इन सब को तुक बन्दी से अधिक कुछ नहीं कह सकते।

* "योजन चार मूंछ रही ठाढी"। तुलसीदास जी ने कुम्भकरण के सम्बन्ध में लिखा है, फिर इसमें सन्देह करने की कौनसी बात रह जाती है।

† Drama of Life and Death by Edward Carpenter Page 172.

हंसमुख--परलोक में तीन बार (प्रातःकाल ५ बजे, दोपहर १२ बजे और रात्रि में भी १२ बजे) स्नान करने की क्यों जरूरत होती है ?—इससे तो प्रतीत होता है कि परलोक हिन्दुस्तान का जैकेबाबाद+ ही है ?

नोट—इस पर सब हँस पड़े ।

एक आलोचक—जब परलोक में शराब भी दी जाती है और व्यभिचार आदि सभी व्यसनों की पूर्ति करने का भी लाइसेन्स मिला हुआ है, तो इस परलोक से तो हिन्दुस्तान के चकले ही अच्छे हैं ।

नोट—इस पर भी सब जोर से हंस पड़े और देर तक हंसते रहे ।

महात्मा गान्धी और रूहों से बात चीत

महात्मा गान्धी को अनेक पत्र लोगों ने भेजे और उनसे पूछा कि क्या उनके पास रूहों के सन्देश आते हैं और भी कुछ-एक प्रश्न इसी सम्बन्ध में किए थे—गान्धी-जी ने उनका जो उत्तर दिया है वह इस प्रकार है:—

मेरे पास मरे हुओं की रूह के कोई सन्देश नहीं आते हैं । इस प्रकार के सन्देश आना असम्भव हो इसका मेरे पास कोई सबूत नहीं है, परन्तु मैं इस प्रकार के

+ हिन्दुस्तान में सब से अधिक गर्मी जैकेबाबाद ही में पड़ती है ।

सन्देश लेने के जो साधन काम में लाये जाते हैं उनका बल पूर्वक विरोध करता हूं—वे (सन्देश) बहुधा धोखा देने वाले और अपनी ही कल्पना का फल होते हैं—यदि इस प्रकार के सन्देशों की सम्भावना भी स्वीकार करली जावे तो भी यह पद्धति प्रयोज्य और रूह दोनों के लिए हानिप्रद है—यह पद्धति अभिमंत्रित रूह को इस भूमि से जकड़े रहने की अभिरुचि देती है जब कि रूह को इस (पृथ्वी) से सम्बन्ध तोड़कर ऊँचा होने के लिए यत्नवान होना चाहिए। शरीर से छूटे हुये, होने के कारण मात्र से कोई रूह पवित्र नहीं हो सकती—वह अपने साथ अनेक दोषों को ले जाती है—इस लिए जो सलाह या सन्देश वह देती है उसके लिये नहीं कहा जा सकता कि वह उचित या सत्य ही है—और यह है कि रूहें चाहती हैं कि पृथिवी निवासियों से संदेश देने आदि का सम्बन्ध रक्खें, यह कोई प्रसन्नता की बात नहीं है—अपितु इसके विपरीत उन्हें इस शास्त्र विरुद्ध (Un Iaw ful) अनुराग से पृथक करना चाहिये।

प्रयोज्य (Meduim) को जो हानि होती है उस के सम्बन्ध में यह कहना है कि मुझे निश्चित रीति से मालूम है कि जो लोग रूहों के बुलाने आदि का संघ करते हैं वे मेरे अनुभवानुसार वे ही हैं जो अव्यवस्थित

या निर्बल चित्त वाले होते हैं और जो क्रियात्मक जगत् में प्रवेश के अयोग्य हो चुके हैं—मैंने इन में से किसी को इस प्रकार के सन्देशों से लाभ उठाते नहीं देखा है।*

चौथा परिच्छेद

रूहों का बुलाना

जिज्ञासु—यदि रूहों के आने आदि की सब बातें निराधार हैं, तो फिर ग्रहणक्षम (Percepient) अपने को कभी किसी की रूह और कभी किसी की रूह क्यों बतलाया करता है?

"यदि रूहोंका आना ठीक नहीं, तो फिर 'अमुककी रूह' ऐसा क्यों बतलाया जाता है"

आत्मवेत्ता—इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है! किसी को भी मेस्मरइज़्म या हिपनाटइज़्म से मूर्छित करके कहलाया जा सकता है कि वह नेपोलियन है, नैलसन है, दयानन्द है, रामतीर्थ है,! यही नहीं उससे यह भी कहलाया जा सकता है कि वह कुत्ता है, बिल्ली है, गदहा है इत्यादिः—

देवदत्त—यह बात कहाँ तक ठीक है कि इस्तैमाल

*Young India Dt. 12—9—1929, P. 302.

"वस्तु पर संस्कार Psychomatory" की वस्तुओं पर प्रयोक्ता के आचार व्यवहार के संस्कार अंकित हो जाते हैं और विशेषज्ञ उन वस्तुओं को देख कर उन आचार और व्यवहारों की तफ़सील बतला सकता है ?

आत्मवेत्ता—इस समय तक इस विषय में जितनी बातें कही गई हैं, उनसे तो यह प्रकट होता है कि कुछेक मोटी बातों को छोड़कर बाक़ी बातें इस कल्पित वस्तु संस्कार के अध्ययन से नहीं बतलाई जा सकतीं—जो मोटी २ बातें इस वस्तु-संस्कार से बतलाई जा सकती हैं, उनका वर्णन इस प्रकार है—

वस्तुओं के इस्तैमाल में आने से उन में इस्तैमाली होने के चिन्ह घिसावट आदि आजाती हैं इन घिसावटों में भेद होता है, किन्हीं के इस्तैमाल करने से वस्तु का विशेष भाग अधिक घिसता है, परन्तु अन्यों के इस्तैमाल करने से वह नहीं, और भाग अधिक घिस जाता है—बरतने वाले पुरुषों के स्वभाव और इन घिसावट के भेदों को लक्ष्य में रखने से एक परिणाम निकल आया करता है कि अमुक स्वभाव वाले पुरुषों के इस्तैमाल करने से वस्तु का अमुक भाग घिसता है—बस वस्तु के उस भाग की घिसावट से बरताव करने वाले पुरुष का

स्वभाव बतलाया जा सकता है—

एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट होजाती है—

"एक उदाहरण"

उदाहरण में जूते को लीजिये-जूते की तली को देखने से प्रकट होगा कि किन्हीं जूतों की एड़ी अधिक घिसती है, किन्हीं के जूतों का अगला भाग और किन्हीं के जूते सभी जगह से समता के साथ घिसते हैं—अब उन पुरुषों के स्वभाव की जांच करो कि जिनके जूतों की एड़ी अधिक घिसा करती है—एक दरजन से अधिक पुरुषों की जांच करने से पता चला कि जिनके जूतों की एड़ी अधिक घिसा करती है, वे प्रायः सभी बहुत साहसी और जोशीले आदमी हुआ करते हैं—अब इस जांच से एक नियम बन गया कि जिनके जूतों की एड़ी अधिक घिसती है, वे उत्साही और जोश वाले मनुष्य हुआ करते हैं—अब इस नियम को ध्यान में रखने से जूते की एड़ी देख कर उसके प्रयोग कर्ता का स्वभाव बतलाया जा सकता है—इसी प्रकार से अनेक वस्तुओं की जांच करने से अनेक नियम बनाये जा सकते हैं—इस सधारण सी बात को भी, कुछेक पुरुषों ने "आत्म विद्या" का एक अङ्ग बना रक्खा है, परन्तु इसका रूहों के बुलाने आदि से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है—यह एक बिल्कुल अलग विषय

है और इसका ज्ञान उपर्युक्त भांति प्राप्त किया जा सकता है—परन्तु जो लोग इस प्रकार जांच न करके स्वमताभिमान से किसी वस्तु के देखने मात्र से प्रयोग कर्त्ता के स्वभाव आदि बतलाने का साहस किया करते हैं उनकी बातों के लिये स्वयं रूह बुलाने का व्यवसाय करने वालों को स्वीकार है कि सब सच नहीं होती हैं❀ वस्तु संस्कार की बात यहां समाप्त हुई—अब फिर असली प्रकरण पर पहुंच जावें—यह कहा जा रहा था कि मनुष्य अपने विचारानुसार ही परलोक के सम्बन्ध में कल्पनायें किया करता है—उदाहरण में दिखलाया गया कि किस प्रकार एक पुराणानुयायी दाक्षिणी पुरुष पर, परलोक के सम्बन्ध में वे ही सन्देश आते हैं, जो उसके लघु मस्तिष्क (चित्त) में स्मृति रूप में भरे हुये होते हैं—यदि मेडियम एक ईसाई होगा तो उसके विचारानुसार सन्देश आवेंगे यदि एक मुसलमान होगा तो, उसको परलोक हूरोगिलमा, अंगूरी शराब आदि से ही भरा दिखाई देगा, जिस से यह बात भली भाँति प्रमाणित हो जाती है कि ये रूहों के नाम वाले सन्देश असल में अपने ही लघु मस्तिष्क के सन्देश हुआ करते हैं ।

❀ ओ० डी० ऋषि कृत सुभद्रा पृष्ठ १०।

तत्त्ववित्—कल्पना करो कि रूहें नहीं आतीं, न परलोक के नाम से रूहों की "कालोनी" ही आबाद है और न वहां से कोई सन्देश ही आते हैं। फिर मनो-रंजनार्थ ही यदि ये रूहों के बुलाने आदि के संघ हुआ करें, जैसे अनेक इन्द्रजाली अपने तमाशे दिखलाया करते हैं, जिन में हाथ की सफ़ाई के सिवा और कुछ नहीं हुआ करता, तो भी क्या हानि है?

"तमाशे के तौर पर भी रूहों के बुलाने आदि के संघ हानिकारक हैं"

आत्मवेत्ता—तो भी हानि है और वह इस प्रकार कि रूहों के अप्रकट रीति से आने, जाने भूत प्रेत बन कर उनके स्वप्नादि में सन्देश देने और अन्य इसी प्रकार की कल्पनाओं का फल यह होता है कि साधारण नर नारी के हृदय में उनका भय उत्पन्न हो जाता है और वह भय भी इस प्रकार का कि उसे किसी प्रकट साधन या साधनों से दूर नहीं कर सकते और हृदय में इस प्रकार का भय बना रहने से हृदय निर्बल होजाता है और हृदय की निर्बलता मनुष्य की अकाल और शीघ्र मृत्यु का कारण बन जाती है—मनुष्य को निर्भीक होना चाहिये, इसी लिये वेद❀ में ईश्वर से प्रार्थना की गई कि अन्तरिक्ष,

❀ बी० डा ऋषि कृत सुभद्रा पृष्ठ १०।

द्यौ (प्रकाशक लोक सूर्य्यादि) पृथ्वी (अप्रकाशक लोक मंगल आदि), आगे पीछे नीचे, ऊपर, मित्र, शत्रु, ज्ञात, अज्ञात, दिन, रात सभी के भय से मुक्त कर देवे भूत प्रेत से डरने वाले या उनकी सत्ता मानने वाले सदैव कायर और डरपोक हुआ करते हैं—और भीरुता और कायरता के समावेश से मनुष्य मनुष्यत्व के सब से श्रेष्ठ अधिकार निर्भीकता को खो बैठता है और इस प्रकार अपने को पतित कर लेता है—अतः ये मिथ्या विश्वास किसी रूप में भी क्यों न रक्खे जावें, मनुष्य के लिये हानिकारक हैं, और इसी लिये त्याज्य हैं—इसी उपदेश के साथ संघ का कार्य्य समाप्त हुआ और आत्मवेत्ता ऋषि ने साथ ही घोषणा भी करदी कि अगले संघ के साथ इस सत्र का कार्य्य समाप्त हो जावेगा।

चौथा अध्याय

पहला परिच्छेद

ग्यारहवां संघ

अन्तिम कर्त्तव्य

आरम्भ—आज के संघ को अन्तिम संघ समझते हुये निकट वर्ती नगरों और ग्रामों के अधिकांश नर नारी इच्छुक हैं कि संघ में चलें और आत्मवेत्ता ऋषि से अन्तिम कर्त्तव्य का उपदेश सुनें—रात्रि का सुहावना समय है—धीमा २ आह्लादप्रद वायु प्रवाहित हो रहा है—चन्द्रमा स्वच्छ नीले गगन मंडल में प्रकाशित हो अपनी उज्ज्वल आभा का विस्तार कर रहा है—रात्रि में खिलने वाले रजनि गन्धा आदि पुष्पों की अनुपम छटा है—सारी वाटिका सुगन्धि—पूरित हो रही है—संघ में भाग लेने के उमंग में, नर नारियों के झुंड के झुंड, श्रावण की घनघोर घटाओं की तरह उमड़े चले आ रहे हैं, हृदय, नव विकसित सरोज की भांति खिले हुये हैं, उल्लासपूर्ण उत्साह से उत्साहित हैं,

जिज्ञासा और शिक्षा ग्रहण की अपूर्व उत्कंठा से उत्कंठित हैं, देखते देखते संघ लग गया और इतनी भीड़ है कि इससे पहले कभी नहीं हुई थी—आत्मवेत्ता ऋषि आये, अपने नियत आसन पर बैठ गये। संघ का समय हो गया। इसलिये कार्य्यारम्भ हुआ।

आत्मवेत्ता—मृत्यु क्या है, मृत्यु के बाद क्या होता है, ये और इनसे सम्बन्धित अनेक विषयों पर पहले दस संघों में प्रकाश डाला जा चुका है और विश्वास है कि उन्हें संघ के प्रेमियों ने अच्छी तरह समझ लिया है—प्रसंग वश उपर्युक्त विषयों के साथ भिन्न-भिन्न स्थलों पर मनुष्य के कर्त्तव्यों का भी विधान हो चुका है, फिर भी आज के संघ का उद्देश्य यह है कि स्पष्ट शब्दों में मनुष्य के मुख्य कर्त्तव्यों को इकट्ठा वर्णन कर दिया जावे—तदनुकूल वे वर्णन किये जाते हैं—आज शंका समाधान का कोई प्रकरण नहीं है—आज तो प्रत्येक बात जो बतलाई जावे, हृदयांकित कर लेनी चाहिये और उसके अनुकूल आचरण करने का यत्न करना चाहिये—उनके आचार में लाने ही से मनुष्य मृत्यु के दुःख से मुक्त हो सकता है—जिन कर्तव्यों की आज शिक्षा मिलनी है, वे गिनती में सात हैं। अब उन्हीं में

से एक-एक कहा जाता है।

पहली शिक्षा—सब से प्रथम जिस शिक्षा को देना है, वह ब्रह्मचर्य्य की शिक्षा है—ब्रह्मचर्य्य का यह भाव है कि मनुष्य में आस्तिक बुद्धि के साथ वह योग्यता उत्पन्न हो, जिससे मनुष्य अपने मन और इन्द्रियों पर अधिकार रख सके—मन बड़ा चञ्चल है—यही मन की चञ्चलता जब इन्द्रियों में भी आ जाती है, तब मनुष्य का पतन हो जाता है।

नोट—आत्मवेत्ता इतना ही कहने पाये थे, कि संघ के समीप ही से किसी ने एक भजन गाना शुरू किया, जिसकी ओर सब का ध्यान चला गया।

भजन १

मन मतवारा इन्द्रिय दश में।
इन्द्रिय हैं विषयों के वश में॥
कान मुग्ध रस में शब्दों के।
नेत्र रूप के जकड़े रस में॥
बँधा गन्ध से है घ्राणेन्द्रिय।
त्वचा फंसी स्पर्श सरस में॥
भांति-भांति के भक्ष्य भोज कर।
रसना उलझ रही षट् रस में॥

इस बन्धन से छुटकारा हो।
प्रभु करो मम-चित्त निज वश में॥

दूसरी ओर से फिर आवाज़ आने लगी—

भजन २

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ प्रभु पद भज कर्म वचन असहीते॥
सहस बाहु दस वदन आदि नृप बचे न काल बली ते।
हम हम करि धन धाम संवारे अन्त चले उठ रीते॥
सुत वनितादि जानि स्वारथरत करु न नेह सब ही ते।
अन्तहु तोहि तजेंगे पामर तू न तजै अब ही ते॥
अब नाथहिं अनुराग जागु जड़ त्यागु दुरासा जी ते।
बुझे न काम अगिनि 'तुलसी' कहुँ विषय भोग बहु घी ते॥

आत्मवेत्ता—इसलिये सब से बड़े मनुष्य के लिये यही दो कर्त्तव्य हैं—(१) ईश्वर परायणता (२) अपने ऊपर अधिकार—इन्हीं कर्त्तव्य द्वय का नाम ब्रह्मचर्य है—सुतराम् ब्रह्मचर्य प्रत्येक नर नारी के लिये अनिवार्य है—जितने भी इन्द्रियों के विषय हैं, क्षणिक सुख के देने वाले हैं और उस क्षणिक सुख के बीतने के साथ ही प्राणियों में उस विषय की असारता जान कर, उस से वैराग्य उत्पन्न होता है—परन्तु यह वैराग्य भी विषयों

के सुख की भांति ही क्षणिक होता है—इस वैराग्य के बीतने पर फिर मनुष्य उन्हीं विषयों की ओर चलने लगता है। बस इसी चलेन्द्रियता के दोष के दूर करने का साधन ब्रह्मचर्य है।

सत्यकाम—विषय की निस्सारता का अभिप्राय क्या है?

आत्मवेत्ता—कोई विषय हो उसका सुख बहुत थोड़ी देर, उसके भोगने के समय मात्र में, रहता है—इधर भोग खत्म हुआ उधर सुख रुख़सत—उदाहरण के लिये रसना के विषय को लीजिये। मनुष्य को किसी वस्तु-विशेष का स्वाद अत्यन्त प्रिय है, वह उसी स्वाद के लिये उसे खाता है—जिह्वा पर उस वस्तु के रखते ही स्वाद आ जाता है। परन्तु वह स्वाद-प्रिय प्राणी चाहता है कि उस वस्तु को खाये नहीं, किन्तु जिह्वा पर ही रक्खा रहने दिया जाय, जिससे देर तक स्वाद आता रहे परन्तु अब उसे ऐसा करने से स्वाद नहीं आता, उस वस्तु के जिह्वा पर रखते ही खूब स्वाद आ गया था, परन्तु मालूम नहीं, वह स्वाद कहां चला गया—वस्तु जिह्वा पर रक्खी हुई है, परन्तु स्वाद नहीं आता—अब स्वाद क्यों नहीं आता, इसलिये कि वह तो क्षणिक था—स्वाद का क्षण बीतते ही स्वाद खत्म हो गया—यही

हाल संसार के प्रत्येक विषय का है, इसलिये इन विषयों को क्षणिक और निस्सार कहा जाता है—ब्रह्मचर्य के नियमों पर अमल करने की योग्यता उत्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य उठते, बैठते, सोते, जागते इन सब नियमों को स्मरण करता रहे, और भरसक यत्न करे कि उन्हें काम में लावे उनके काम में लाने के लिये दो साधन हैं:—

"ब्रह्मचर्य के दो साधन"

पहला साधन तप है—मनुष्यों को कठोरता सहने का जीवन व्यतीत करना चाहिये—कष्टों को प्रसन्नता से सहन करना चाहिये—आरामतलबी के पास भी नहीं फटकना चाहिये—दूसरा साधन स्वाध्याय है—उत्तम २ ग्रंथों के अध्ययन से मनुष्य का हृदय और मस्तिष्क ब्रह्मचर्य के पवित्र नियमों के ग्रहण करने के योग्य बना करता है।

दूसरी शिक्षा—चित्त की एकाग्रता है—सुख असल में विषयों में नहीं, किन्तु चित्त की एकाग्रता में है—इस लिये चित्त एकाग्र होना चाहिये—चित्त की एकाग्रता प्राप्त करने के लिये इस बात की आदत डालनी चाहिये कि जो काम भी करे, खूब जी लगा कर किया करे और अपने को कभी खाली न रक्खे कुछ न कुछ सदैव

करते रहना चाहिये—चित्त की एकाग्रता के लिये ईश्वर के मुख्य नाम ओम् का सार्थक जप इस प्रकार करना चाहिये कि कोई श्वास जप से खाली न जाने पावे—यह जप प्रातः सायं अथवा रात्रि आदि में अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार करना चाहिये। इन साधनों से चित्त एकाग्र हो जाता है—चित्त की एकाग्रता मानो मोहन मन्त्र है, जिस से प्रत्येक कार्य्य की सिद्धि हो सकती है।

नोट—दूसरी शिक्षा का व्याख्यान समाप्त करते ही एक सत्संगी ने ऋषि की अनुमति लेकर एक भजन सुनायाः—

भजन

मोहन मन्त्र सिखादे मैया,
मोहन मन्त्र सिखादे !
आ ! स्वर्गीय शान्ति की, प्यारी अनुपम प्रभा दिखादे।
मैया मोहन मन्त्र सिखादे॥

हृत्तन्त्री के तार हिलादे, जीवन शंख बजादे,
आशा का संगीत सुनादे, साहस साज सजादे॥
मैया मोहन मन्त्र सिखादे॥

मस्त बनादे, देश प्रेम की बूटी हमें पिलादे,
द्वेष घटादे, मोह हटादे, मरते हुये जिलादे॥
मैया मोहन मन्त्र सिखादे॥

पौरुष दीप जलादे, क्षण में बाधा विघ्न भगादे,
सोई हुई कला-कौशल को, कौशल मयी ! जगादे ॥
मैया मोहन मन्त्र सिखादे ॥

आत्मवेत्ता—"तीसरी शिक्षा ममता का त्याग है।"
"तीसरी शिक्षा" ममता का व्याख्यान हो चुका है*—
ममता दुःखों की जननी है—ममता
को छोड़ देने से मनुष्य दुःखों की सीमा उल्लंघन कर
जाता है—मौत उसके लिए कष्टप्रद नहीं रहती है—
ममता का साधन वैराग है-प्रबल वैराग से ममता नष्ट
हो जाती है, इसलिए यत्न करके वैराग से ममता के
परदे को चित्त से हटा देना चाहिए-काम ज़रूर मुश्कि-
ल है, परन्तु असम्भव नहीं—यत्न करने से सब कुछ
होता है:—

उदयवीर—तुलसीदास जी भी इस ममता के फ़रि-
यादी थे:—

भजन

ममता तू न गई मेरे मन ते ॥
पाकर तोह जन्म को साथी, लाज गई लोकनतें।
तन थाक्यो, कर काँपन लागे, ज्योति गई नैननतें ॥
ममता तू न गई० ॥

*देखो पहले अध्याय का चौथा परिच्छेद।

स्रवन§ वचन न सुनत काहु के, बल गए सब इंद्रिन तें
टूटे दसन† बचन नहिं आवत, सोभा गई मुखन तें ॥
ममता तू न गई० ॥
कफ़, पित, वात कण्ठ पर बैठे सुतहिं बुलावत करतें।
भाई बन्धु सब परम पियारे, नाहिं निकारत घरतें ॥
ममता तू न गई० ॥
जैसे ससि मंडल बिच स्याही छूटे न कोटि जतनतें।
'तुलसीदास' बलि जाऊं चरननतें लोभ पराये धनतें ॥
ममता तू न गई मेरे मन तें ॥

"चौथी शिक्षा"

आत्मवेत्ता—चौथी बात जो आचरण में लानी चाहिये, वह आत्म-निरीक्षण (self introspection) है—आत्म निरीक्षण का भाव यह है कि मनुष्य शान्ति के साथ समय २ पर अपने गुण और दोषों पर विचार किया करे और दोषों के छोड़ने के लिये यत्नवान् रहा करे—जब तक मनुष्य अपने ऊपर दृष्टि नहीं रखता तब तक उसे अपने दोषों, अपनी त्रुटियों का पता नहीं चला करता—इसलिये दिन रात में एक ख़ास समय में और सब से अच्छा रात्रि में सोने से पहले का समय इस काम के लिये हुआ करता है उसी समय ईश्वर को अपने हृदय में विराजमान

§स्रवन = श्रवन (कान)। † दान्त।

समझकर अपने दिन भर के कामों पर विचार किया करे, कि वे दोष उसमें न रहें-इसी का नाम आत्म-अध्ययन है ।

दूसरा परिच्छेद

अन्तिम कर्त्तव्य

“पांचवीं शिक्षा”

पहली चार शिक्षायें,वे कर्त्तव्य हैं, जिनका सम्बन्ध केवल उन्हीं मनुष्यों से हुआ करता है, जो उन्हें प्रयोग में लाया करते हैं, अब दो शिक्षायें वे हैं, जिनका सम्बन्ध अन्यों से है—उनमें से पहली अर्थात् पांचवीं शिक्षा “विश्वप्रेम” है—मनुष्य का हृदय लचकीला होना चाहिये, जिससे उस में प्राणी-मात्र की हित-कामना निहित रहा करे—ईश्वर जगत् का पिता है, मनुष्य, पशु, पक्षी, सभी उसके उत्पन्न किये हुये, उसके पुत्र और पुत्रियों के सदृश हैं—इसलिये जहां मनुष्यों के अन्तर्गत भ्रातृ भाव होना चाहिये, वहां पशु पक्षियों के लिये भी उन के हृदय में दया का भाव रहना चाहिये—इस प्रेम की, मंगल कामना से, जब मनुष्य का हृदय पूरित रहा करता है, तब उसके भीतर एक अपूर्व उत्साह और आह्लाद की आभा जाज्वल्यमान रहने लगती है—उसके प्रत्येक कार्य की सिद्धि का अचूक कारण बना करती है—

और मनुष्य इसी प्रकाश से अनेक दोषों तथा अनाचारों से बचा करता है—जहां प्रेम से हृदय शुद्ध और उदारतापूर्ण नहीं हुआ करता है, वहां ईर्ष्या द्वेष की मलीनता और संकीर्णता का वह निवास गृह बना करता है—यही कर्त्तव्य है, जिसके प्रयोग में आने से मनुष्य परस्पर प्रेम के सूत्र से सूत्रित हो कर जाति और समाज बनाया करते हैं, जो अभ्युदय (लोकोन्नति) का एक मात्र कारण है—परस्पर मनुष्यों में इस प्रेम का अंकुर अधिक उसी समय अंकुरित हुआ करता है, जब उनके हृदय प्रभु-प्रेम से भी पूरित हुआ करते हैं—इसलिये मनुष्य प्रेम और ईश्वर प्रेम दोनों साथ २ ही चला करते हैं—

नोट—संघ के एक सदस्य ने मग्न होकर भजन गाना शुरू कियाः—

भजन १

प्रेम बीज तू अविनाशी है, नश्वर विश्व रहे न रहे।
विश्व प्रेम में रंग ले प्यारे! फिर तनु-रक्त रहे न रहे॥
विद्युत मय विचार विभुता हो मृण मय* देह रहे न रहे।
चत विचत हृदय में समता हो, शब्द स्नेह रहे न रहे॥
नव अंकुर विकासमय उलहे ऊपर खण्ड रहे न रहे।

* नाशवान्।

ज्ञान ज्योति जग में प्रकटित हो अग्नि प्रचंड रहे न रहे
क्रय कर सत्य त्याग दे सर्वस पीछे शक्ति रहे न रहे
हो बलिदान कर्म वेदी पर स्वार्थ भक्ति रहे न रहे ॥

भजन २

प्रेम धन प्रभुवर प्रेमिक प्राण !

ताप तिमिर में फिरा भटकता करता अनुसन्धान ।
प्रेम पन्थ प्रभु ! मिला न तेरा हुआ निराश निदान ॥
अहा, नाथ इतने में प्रगटा प्रेम प्रभामय भानु ।
दीख पड़ा तब प्रेम पंथ प्रभु सतत शान्त सुखदान ॥
किन्तु हाय ! सहसा विद्युत सम कहां लुका वह भानु ।
प्रगटा दो प्रगटा दो पुनरपि उसको प्रेम निधान ॥
प्रेम धन प्रभुवर प्रेमिक प्राण ॥

आत्मवेत्ता—छठा कर्त्तव्य सेवा का उच्च भाव है—

"छठी शिक्षा"

यह वह श्रेष्ठ कर्त्तव्य है, जिससे मनुष्य सहृदय और लोक प्रिय बना करता है—उसके आत्मा में विशालता आती है—इसी उच्च कर्त्तव्य के प्रयोग में लाने से मनुष्य पतितों का पावन बनता, गिरे हुओं को उठाता और अनेक दोषों से युक्त प्राणियों को दोष मुक्त करता है—एक उदाहरण दिया जाता है और यह उदाहरण वैष्णव

सम्प्रदाय के एक आचार्य "चैतन्य" के जीवन से सम्बन्धित है:—

"एक उदाहरण"

एक बार महात्मा चैतन्य बंगाल के एक नगर में आये और एक वाटिका में ठहरे—उनके साथ उनके कतिपय शिष्य भी थे—नगर के लोगों ने बात चीत में प्रगट किया कि उस नगर में एक व्यक्ति मघायी बड़ा दुष्ट है, उससे बहुधा नगर निवासी दुःखी रहा करते हैं—चैतन्य ने यह सुनकर अपने शिष्य को भेजा कि मघायी को बुला लावे—मघायी उस समय अपने एक दो मित्रों के साथ बैठा शराब पी रहा था—उसी समय चैतन्य के शिष्य ने उसे गुरु का सन्देश सुनाया और साथ चलने की प्रार्थना की—मघायी ने एक खाली बोतल सन्देशहर को मारी, जिससे उसका सिर ज़ख्मी हो गया और खून निकलने लगा—उसी हालत में शिष्य ने लौट कर घटित घटना गुरु को सुना दी—चैतन्य ने तब अपने १०–१२ शिष्यों को भेजा कि यदि वह प्रसन्नता से न आवे, तो उसे पकड़ लावें, मघायी अब उनके साथ चैतन्य के पास जा रहा है—वह सोचता जाता था कि उस से अपराध हुआ है और उसे कठोर दण्ड भोगना पड़ेगा, इसी चिन्ता से चिन्तित और दुःखी मघायी

चैतन्य की सेवा में उपस्थित किया जाता है—चैतन्य ने उसे आराम के साथ एक गुदगुदे बिस्तरे पर लिटवा दिया, परन्तु इससे उसका भय और बेचैनी दूर नहीं हुई इसी बीच में चैतन्य उसके पांवों के पास जाकर बैठते हैं और उसके पांव दाबना चाहते हैं—पांव के छूते ही मधायी घबरा कर उठ बैठता है और बड़ी नम्रता से उस ने अपने पातकों और अवगुणों की गिनती कराते हुए कहा कि महाराज! आपने मेरे अपवित्र शरीर को हाथ लगा कर क्यों अपने हाथों को अपवित्र किया? उसकी आंखों से अश्रुधारा बही चली जा रही है और वह अपने दोषों की गणना चैतन्य को कराता चला जा रहा है—फल यह होता है कि मधायी की काया पलट हो जाती है और वह चैतन्य का शिष्य बनता है और उनके शिष्यों में सबसे ऊँचा स्थान पाता है—इस आख्यायिका से स्पष्ट है कि किस प्रकार चैतन्य ने सेवा के द्वारा एक गिरे हुए पुरुष को उठा कर उसे अच्छे से अच्छा आदमी बना दिया—

आत्मवेत्ता—सातवां और अन्तिम कर्त्तव्य विशेष कर चतुर्थाश्रमस्थ मनुष्यों का यह है कि वे अपने को ईश्वर भक्ति, ईश्वर प्रेम से इस प्रकार रंगलें कि उसके सिवा

"सातवीं शिक्षा"

संसार की प्रत्येक वस्तु उन्हें गौण प्रतीत होने लगे इसके लिये उन्हें निरन्तर उठते बैठते सोते जागते, ईश्वर का स्मरण करते रहना चाहिये— यदि वे सोने से पहले जी लगाकर ईश्वर का स्मरण करते हुये सो जावेंगे, तो निश्चित है कि उन्हें यदि स्वप्न भी दिखाई देगा—तो उस में वे अपने को ईश्वर का साक्षात्कार करते हुए ही देखेंगे। प्रत्येक प्रकार के झगड़ों, झंझटों और अशान्ति प्रद कार्यों से चित्त हटाकर इस ही एक काम में लग जाने से इष्ट की सिद्धि होती है और इस इष्ट सिद्धि के बाद व्यास के शब्दों में मनुष्य को अनुभव होने लगता है—

प्राप्तं प्राप्तव्यम्

आत्मवेत्ता ऋषि ने ज्योंही अपना उपदेश समाप्त किया, प्रत्येक सत्संगी अपने को कृतकृत्य समझ रहा था और समझने लगा था कि उसका कर्त्तव्य क्या है और ऋषि के प्रति कृतज्ञता के भावों से प्रत्येक का हृदय भरपूर हो रहा था—संघ की समाप्ति की घोषणा होने से पूर्व अनेक सत्संगियों ने प्रकट रूप से उस कृतज्ञता का प्रकाश किया और चाहा कि किसी अन्तिम कर्त्तव्य के सम्बन्ध में कुछेक भजन गायन किए जावें—ऋषि की अनुमति से उनका प्रारम्भ हुआ।

ग़ज़ल (१)

जलवा कोई देखे अगर इकबार तुम्हारा।
हो जाय हमेशा को खरीदार तुम्हारा ॥
क्यों उसका कोई तारहो बेतार जो कोई।
चिन्तन किया करता है लगातार तुम्हारा ।
लवलीन हुआ तुम में मिटा कर जो दुई को।
तुम यार उसी के हो वही यार तुम्हारा ॥
किस तरह ज़मीं चलती है सूरज के सहारे।
देखे कोई आलम में चमत्कार तुम्हारा ॥
फूलों की तरह खिलते हैं रातों में सितारे।
आकाश बना गुलशने बेखार* तुम्हारा ॥
बुद्धि की पहुँच से भी परे हद तुम्हारी।
हां तर्क की सीमा से परे पार तुम्हारा ॥
अज्ञेय हो तुम है यही आखिर को "यथीइज़्म"§ ।
इनकार भी आखिर को है इकरार तुम्हारा ॥

ग़ज़ल (२)

रहता है तापो तेज तपोबल के हाथ में।
जिस तरह चांदनी महे अकमल † के हाथ में ॥
मिलना न मिलना उन का तो है कल के हाथ में।

*निष्कंटक। §नास्तिकवाद। †पूर्णिमा का चन्द्रमा।

पर दुःख है वह कल नहीं बेकल के हाथ में ॥
किसके तलाश की यह लगन है लगी हुई ।
बिजली की लालटेन है बादल के हाथ में ॥
घेरा है लोभ मोह ने इस तरह जीव को ।
जैसा कोई शरीफ़ हो अरज़ल § के हाथ में ॥
निर्लेप आत्मा तमोगुण से हुआ मलीन ।
हीरा सियाह हो गया काजल के हाथ में ॥
अभ्यास करना पड़ता है अष्टांग योगका ।
आता है मोक्ष मार्ग बहुत चलके हाथ में ॥

भजन (३)

अन्त समय में हे जगदीश्वर ! तेरा ही सुमरण तेराही ध्यान हो ॥
काबू में होवें इन्द्रिय अपने, वश में प्राण और अपाण हो ॥ अन्त० ॥
खाली हो चित्त वासनाओं से अपना,
दुःख का न उसमें नामो निशान हो ॥अन्त समय में०॥
श्रद्धा से भरपूर मन होके अपना,
भक्ति का हृदय में उत्कृष्ट स्थान हो ॥ अन्त समय में ॥
सत ही पे निर्भर हों काम अपने,

§ कमीना ।

सत ही का अभ्यास सतही की बान हो ॥अन्त समय में॥
जीते हों सत पर मरते हों सत पर,
सत ही का गौरव सत ही का नाम हो ॥अन्त समय में॥
भूलें न यम को, पालें नियम को, जीवन में अपने तपही प्रधान हो ॥अन्त समय में०॥
लवलीन हों प्रेम में तेरे ऐसे, सुख की न सुध हो दुखका न भान हो ॥
अन्त समय में हे जगदीश्वर ! तेरा ही सुमरण तेरा ही ध्यान हो ॥

आत्मवेत्ता—(प्रसन्न चित्त हो कर) अब संघ का कार्य समाप्त हुआ—ईश्वर करें

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे पश्यन्तु भद्राणि, मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत् ॥

अर्थात् सभी सुखी और स्वस्थ हों, सभी मंगल कामनाओं की पूर्त्ति देखें, और कोई भी दुखी न हो ।